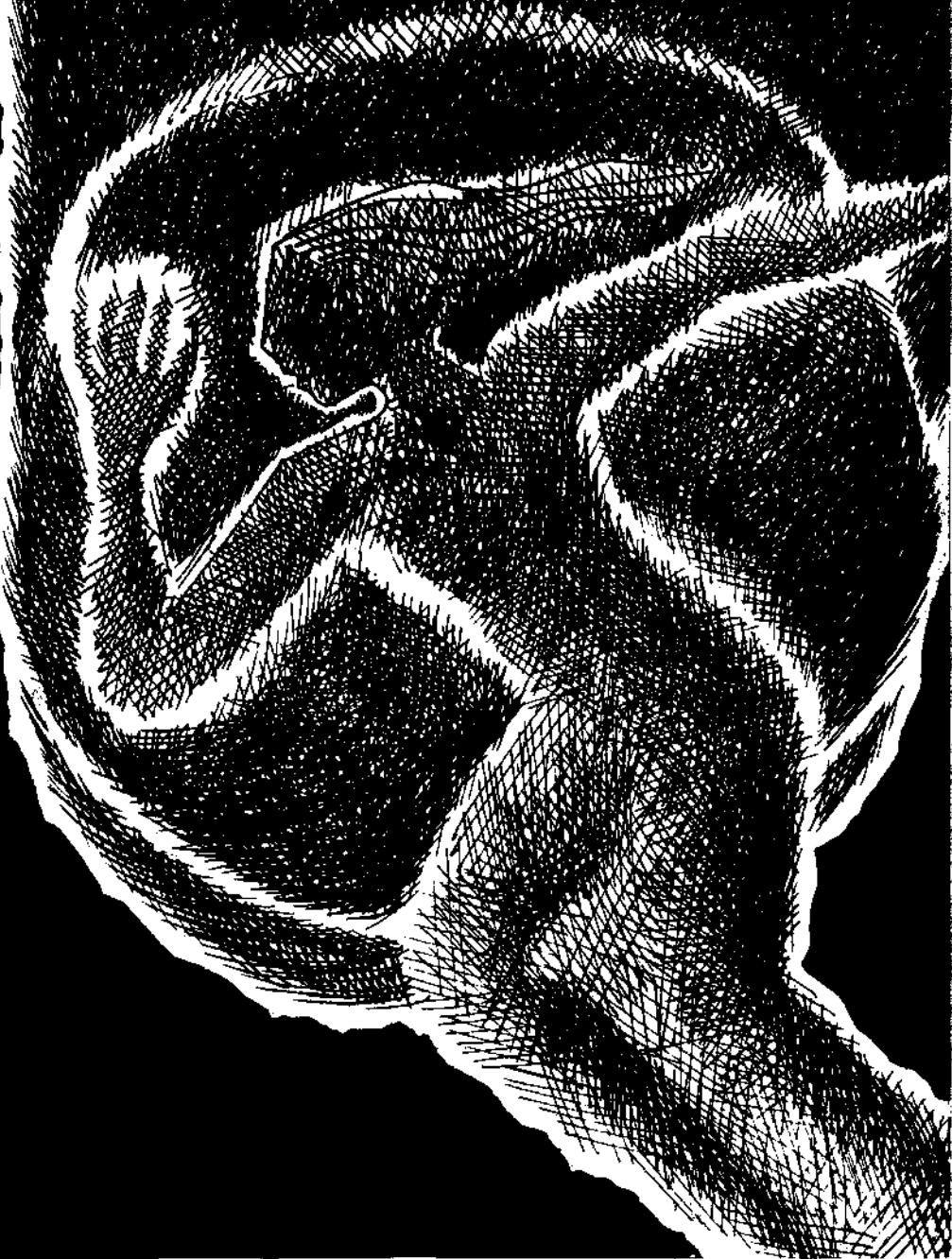


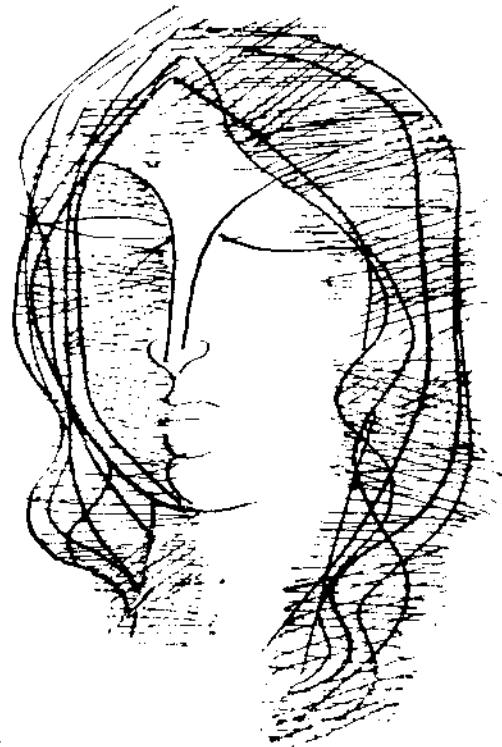
ଅଧ୍ୟାତ୍ମିକ



अंधा कुआं
(सम्पूर्ण नाटक)

अंद्या कुआँ

लक्ष्मीनारायण लाल



अम्बर प्रकाशन

शैक्षिक प्रकाशक

888, इस्ट पार्क रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली-110005. (भारत)



कापीराईट : लक्ष्मीनारायण लाल

प्रथम संस्करण : जुलाई 1981

मूल्य : 20 रुपये केवल

प्रकाशक : अम्बर प्रकाशन
888 ईस्ट पार्क रोड,
नई दिल्ली-110005. (भारत)
दूरभाष : कार्यालय : 526933
आवास : 561321

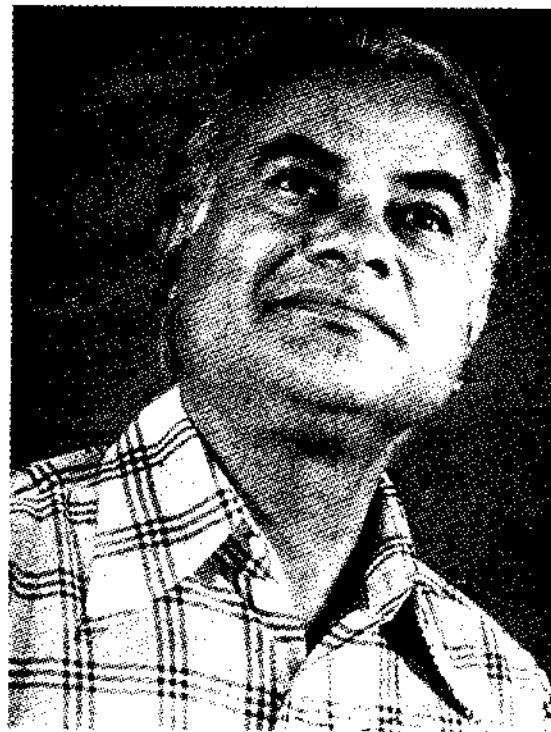
गाँव अमारा ज़िला जौनपुर निवासी
मित्रवर माताप्रसाद श्रीबास्तव
को
सप्रेम भेट

मुद्रक : मित्तल प्रिण्टर्स
के-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

“अंधा कुआँ” नाटक के अभिनय, प्रदर्शन, अनुवाद, प्रकाशन, प्रसारण,
रूपान्तरण और फ़िल्मीकरण आदि के लिए इसके लेखक की लिखित पूर्व अनुमति
अनिवार्य है।

ANDHA KUAN : LAKSHMI NARAIN LAL

Rs. 20/-



लक्ष्मीनारायण लाल

आधुनिक, वर्तमान और समसामयिक भारतीय-हिन्दी नाट्य और रंग-मञ्च के परम भहत्त्वपूर्ण सशक्त नाटककार। मौलिक रंगदृष्टि और नाट्य प्रयोगों के लिए पहले उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी किर केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित।

जन्म : चार मार्च उन्नीस सौ सन्नाइस—उत्तर प्रदेश, बस्ती ज़िले के जलालपुर गाँव में।

शिक्षा : प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० (1950) डिप्टी (1952)

इलाहाबाद, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी अध्यापक; आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर; नाट्य केन्द्र, इलाहाबाद के संस्थापक-संचालक, नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादक; अन्तर्राष्ट्रीय नाट्य सम्मेलन, बुखारेस्ट में भारत का प्रति-निधित्व; ग्रीक नेशनल थियेटर, एथेन्स में व्याख्यात। सन् इकहत्तर से स्वतन्त्र लेखन।

□ □

अंधा कुआँ : जैसा मैंने देखा

जो जलहीन है, जिसकी अर्थवत्ता नष्ट हो गई, परन्तु फिर भी जिसकी सत्ता है—किसी का बाधक या मारक बनकर, लोग उसे अंधा कुआँ कहते हैं। यह कुआँ प्रतीक है उस विवेकहीन अंधे व्यक्ति और समाज का जो नारी को एक जड़ वस्तु से अधिक स्थान नहीं देता और यह बहुत बड़ी विडम्बना है नारी नियति की, कि वह धूम-फिर कर बार-बार इसी कुएँ में गिरती है, निकलती है, फिर गिरती है और अन्त में इसी को आत्मसात् करके इसी में अपनी आदुति दे देती है।

यही मूल विचार है—लक्ष्मीतारायण लाल द्वारा लिखित और प्रस्तुत नाटक 'अंधा कुआँ' का। ग्रामीण जीवन के यथार्थवादी रंगमंच पर सैद्धांतिक और व्यवहारिक प्रशिक्षण देते हुए १० से ३१ मार्च तक साक्षरता निकेतन लखनऊ में हिन्दी जगत के परम विल्यात रंगकर्मी डॉ. लाल ने रंगमंच के जिज्ञासु प्रशिक्षाधियों को न केवल ग्रामीण संस्कृति, उसके यथार्थबोध तथा रंगमंच का विवेचन किया वरन् 'अंधा कुआँ' का सफल मंचन करके लखनऊ रंगमंच तथा दूरदर्शन को एक अद्भुत भेट प्रदान की।

विचार बोज : इक्कीस दिन का यह रंग शिविर प्रारम्भ से अन्त तक विचारों और क्रियाओं की आनन्द यात्रा के रूप में चला। यात्रा का मूल स्रोत शिविर के उद्घाटन भाषण में ही मिल गया, जब निकेतन के निदेशक एवं प्रसिद्ध साहित्यवेता श्री भगवतीचरण सिंह ने ग्रामीण रंगमंच को भारतीय नाट्य भावना से जोड़ते हुए कहा कि भारतीय रंगमंच तुलसी के बिरवे की तरह जन्मा, पनपा, विकसित हुआ और अब गमले के गुलाब की तरह अपने को संवारने-सजाने की कोशिश कर रहा है। श्री सिंह की इस बात में एक संकेत था—निश्चित दिशा की ओर जाने का और एक भाव भी था कि जिस ओर आज का भारतीय रंगमंच जा रहा है, वह दिशा अपनी नहीं है, हाँ, अपनी बनाई जा सकती है—यदि हम इसे जोड़े अपनी धरती से, अपनी माटी से और संस्कृति से, पूजे उसी तरह, जिस तरह तुलसी के बिरवे को पूजते हैं—यह हमारी उपासना भी है और औषधि भी।

परम्परा से जुड़ी हुई, किन्तु आधुनिक इस बात को डॉ. लाल ने रंगमंच के

प्रत्येक संदर्भ में इस प्रकार जोड़ा कि यही इस शिविर का विचार बीज बन गया। ग्रामीण जीवन तुलसी का बिरचा ही तो है—ऊँची-नीची, कंकरीली पथरीली जमीन पर जमा हुआ, हवा व्यार अंधी पानी और तेज धूप का सामना करते हुए प्रकृति और सामाजिक व्यवस्था से लड़ रहा है—हर अभाव को झेल रहा है, फिर भी अपने में मस्त और हरा-भरा। यह कब का मुरझा था होता, यदि उसका यथार्थ किसी आस्था की आंद्रेता से न जुड़ा होता।

कथ्य कसौटी

डॉ लाल के मानस ने जिस प्रकार ग्रामीण जीवन के यथार्थ को आत्मसात् किया और उसे रंगमंच पर उतारा वह उनको अपनी अनुभूतियों दृश्यों, विष्वासों और चरित्रों की तोर्थात्रा है, जो उन्होंने अपने पैरों चलकर पूरी की है, किसी वाहन पर बैठ कर नहीं। यात्रा के काँटों की पीड़ा अनुभव की है, रास्ते के पत्थरों से टकराये हैं और आसपास के खिले हुए फूलों को देखा है—अपने को देखा है। नाटक के कथानक का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कई बार उन सब चरित्रों को, उनके आसपास की पृष्ठभूमि को याद किया, बताया, बताते-बताते आत्मविभोर हुए, जो इस नाटक के पात्र और दृश्य हैं। यह उनके अपने गाँव की कहानी है, उनका अपना भोग है, इसीलिए इतना जीवंत और सशक्त होकर रंगमंच पर उतारा है।

केहु न सुनी पुकार हिरनी तब कुअंना गिरी।

तुंहि राखी यहि बार विरन गोसाई कुअना॥

लाल का यह सोरठा ही कथ्य का सारांश है, जो सम्पूर्ण वस्तुविधान की सीपी में मोती की तरह समाया हुआ है। 'केहु न सुनी पुकार' यह शिकायत है रक्नाकार की, उस व्यक्ति और समाज के प्रति, जिसने निरीह स्त्री की पुकार नहीं सुनी। पुकार और कुछ नहीं, अपने को व्यक्त करने की अकुलाहट, जिसे समाज नहीं समझ सका। 'हिरनी तब कुअना गिरी' स्त्री तब अंधे कुएँ में गिर गई—यह सोचकर कि यह कुआँ मेरी लाज रखेगा वह कुएँ को 'विरन गोसाई कुअना' कहती है। कितनी बड़ी करुणा है। सम्पूर्ण व्यवस्था, सम्पूर्ण चेतना सत्ता जब उसके प्रतिकूल हो जाती है तब यह जड़ सत्ता 'कुएँ' को ही अपना भाई बना लेती है।

इस कथानक की मूल पात्र 'सूका' है जो एक परपुरष इन्दर के साथ भाग गई थी। कथानक का यह अंश कथोपथन के माध्यम से आता है, वास्तविक नाटक इसके उपरान्त प्रारम्भ होता है जब सूका का पति भगौती सूका को घर में मार रहा है, क्योंकि वह इन्दर के हाथ से उसे छुटा लाया है, पैसा खर्च किया है। उसे छुटाकर इसलिए लाया है कि अपने अपमान का बदला ले।

भगौती का काका है, मिनकू, उसका भाई है अलगु और वह भी है राजी। वे सब चाहते हैं कि भगौती एक अच्छे इंसान की तरह रहे, सूका को रखें। लेकिन मनौती के साथी हैं—हरखू, तेजई, विजई आदि, सभी गजेड़ी भगेड़ी। वे सूका के प्रति भगौती की कोशाग्नि कुरेदते रहते हैं। भगौती सूका को रोज मारता-पीटता है, उसे अपने कपड़े पहनने को नहीं देता, भूखा रखता है। सूका कुएँ में कूद जाती है, लेकिन कुआँ अंधा है। वह कुएँ से निकाली जाती है और भगौती छप्पर की थूनी (खमिआँ) से उसे बाँध देता है। तभी रात के सन्नाटे में इन्दर आता है और उसे अपने साथ ले जाना चाहता है। लेकिन सूका ने सब कुछ देख लिया है—इन्दर के साथ भागकर अदालत से छूटने के बाद वापस आकर रोज़-रोज़ मार खाकर अंधे कुएँ में गिरकर, लेकिन कहीं उसे सहारा नहीं मिला। तब भगौती के संग को ही अपनी नियति मानकर वह स्वीकारती है और इन्दर को चौर-चौर कहकर भगा देती है।

लेकिन भगौती के भीतर गाँठ है—अपमान की, ईर्षा की, कुंडा और टूटन की। अपनी सारी समस्याओं की जड़ वह सूका को मानता है। उसे मानसिक तौर पर पूरी तरह तोड़ने के लिए उसकी छाती पर मूँग दलने के लिए सौत ले आता है। लेकिन यहाँ भी भगौती हार जाता है—सौत आती है और सूका उसे अपनी बेटी की तरह मानने लगती है—यहाँ तक उससे प्यार करती है कि जब उसे पता चलता है कि लच्छी किसी हीरा से प्यार करती है तो चुपके-चुपके उसे हीरा के साथ भगा देती है। भगौती पूरी तरह परास्त हो जाता है। नशा पीकर जर्जर हुआ शरीर, तनाव और बार-बार के आघात से अब वह खोखला हो गया है। तभी एक दिन इन्दर उसे पीट देता है। उसकी टाँग टूटी है, यह बुखार और खांसी से अस्त है। तभी रात के अंधेरे में इन्दर आता है। भगौती को मारकर सूका को ले जाना चाहता है। सूका गँड़ासा लेकर इन्दर का सामना करती है और भगौती को बचाते हुए इन्दर के प्रहार से खुद मर जाती है।

लेकिन नाटककार अपने कथाकार के माध्यम से कहता है कि सूका मरी नहीं बल्कि भगौती के लिए उसी दिन से वह जीवित हो गई। जीते जी भगौती जिसे रोज मारता था, वह अब मर गई तो भगौती उसे कभी नहीं भार पाया। बल्कि वह उसी थूनी के पास आकर अब भी खड़ी हो जाती है और भगौती उसे एकटक निहारा करता है।

प्रासंगिकता का प्रश्न

कोई भी पूछ सकता है कि आज से पहले घटित इस कथानक का आज के ग्रामीण जीवन और उसके यथार्थ से क्या तालमेल है? आज जो कुछ घटित हो रहा है ग्रामीण जीवन में—भूख, गरीबी, बीमारी, बेकारी, वर्ग संघर्ष और प्रोप्रेशन,

४ :: अंधा कुआँ

इन सबको न छूकर यह नाटक एक कहानी लेता है—केवल स्त्री पुरुष के सम्बन्धों की, क्या यह ग्रामीण जीवन का यथार्थ कहा जा सकता है? हाँ, यह सबसे बड़ा यथार्थ है, शाश्वत यथार्थ, और इसी यथार्थ को ग्रामीण जीवन में सबसे अधिक झुठलाया गया है। स्त्री पुरुष की समानता का डंका पीटने वाले इस युग में राजनीतिक और सामाजिक संस्थायें जितना कुछ कर रही हैं, उसका जितना अंश गाँवों तक पहुँचता है और फिर जो कुछ पहुँचता है उसका क्या असर होता है? स्त्रियों के अपहरण, उनकी हत्या, उन्हें जिन्दा जलाना—ये सारे कुकर्म अखबारों की सुर्खियों में भरे रहते हैं। इसलिए यह कहना कि यह समस्या वर्तमान की नहीं है, गलत है। हाँ, यह सच है कि इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी समस्याएँ हैं, सो तो हैं। उसे कौन इंकार करता है। 'अंधा कुआँ' नाटक का कथा-सूत्र वर्तमान का है। वह अब भी घट रहा है। लगभग हर गाँव में उस प्रकार के भगौती और सूका हैं—एक आध में नहीं, कई एक की तादाद में हैं।

नाटकीयता की जाँच

जो कुछ कहा गया, वह मंच पर कितना सफल हुआ—लेखक की जो अनुभूति थी, उसे अभिनेता ने भी भोगा या नहीं। और उससे भी आगे उस अनुभूति का रसास्वादन दर्शक के मन के किस स्तर पर किया? मैं स्वर्य प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ। जब यह नाटक साक्षरता निकेतन में खेला गया तो आसपास के गाँवों के भी दर्शक थे, जिनकी चुप्पी, तल्लीनता और नाटक देखने के बाद उनकी प्रतिक्रिया इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इस नाटक के कथ्य को सम्पूर्णता से ग्रहण किया और उनके आस्वाद की नाटक के दृश्यबन्द तथा अभिनय ने सम्पूर्णता प्रदान की। दूसरे दिन यही नाटक अभिजात्य दर्शक समाज के बीच रवीन्द्रालय में खेला गया। दर्शकों में रंगकर्मी, रंगमंच के पारखी तथा समाचार पत्रों के प्रतिनिधि भी थे। लगभग सभी ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि इस नगर में जहाँ नित्य नये प्रयोग हुआ करते हैं और नाटक कुछ लोगों का महज शौक बन गया है, बहुत दिनों बाद एक साफ मुथरी सार्थक प्रस्तुति देखने को मिली।

दूरदर्शन में भी इस नाटक की फिल्म बनी और यह लेख लिखे जाने तक प्रदर्शित नहीं हुई थी। परन्तु दूरदर्शन के नाटक पारखियों ने इसके अच्छे प्रभाव की सम्भावनाओं को व्यक्त किया है।

कुछ विशेष

रंगमंच के क्षेत्र में इस नाटक को कुछ विशेष उपलब्धियाँ हैं जिनको यदि भविष्य में दोहराया जाये तो ग्रामीण रंगमंच को अधिक व्यापक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पहला है इसका कथाकार, जिसे लेखक ने नट-नटी या

सूत्रधार के स्थान पर लिया है। पर यह सूत्रधार और नटनटी से भी ज्यादा प्रत्यक्ष लगता है। कहानियाँ सुनाना उसका भी काम है, लेकिन वे कहानियाँ जो अपने आसपास घटती हैं। वस्तुतः यह संगीत पार्टी का एक सदस्य है, जो पार्टी मंच पर बैठी रहती है और कथानक के विभिन्न जोड़ों पर कथातत्व को मिलाते हुए अर्थपूर्ण संगीत देती है। रंगमंच पर नाटक की कहानी का जितना अंश अभिनीत होता है उसके आगे का देशकाल जो मंच पर नहीं दिखाया जाना है, वह कथाकार अपने स्वगत कथन में कह देता है। इस प्रकार यह कथाकार अपने आप में एक वाचक है जो अभिनय भी करता है। मंच पर बैठे रहने के कारण संगीत पार्टी का प्रत्येक सदस्य भी एक तरह से अभिनेता ही है।

नाटक की दूसरी उपलब्धि है—इसके गीत लोक धुनों पर आधारित गीतों के शब्द की नहीं वरन् भावविभव भी ग्रामीण रसानुभूति के गहरे सामर से निकले हुए लगते हैं—धूइ देत्यो राम हमारे मन धिरजा—पीड़ाओं से व्युत्थित मन राम की झोली में डालकर केवल दूसरों के बंगन को देखकर अपने अभाव को भूल जाने की कोशिश करता है—सब की महलिया दियना जरूर है, हरि लेत्यो हमरो अंधेरे, हमारे मन धीरजा—सम्पूर्ण नाटक की आत्मा कहण है और इस नाटक की उस कहणा को और अधिक धनीभूत करते हैं।

तीसरी विशेषता है—नाटक की निष्पत्ति लेखक, कथाकार अथवा नाटक के किसी भी चरित्र के द्वारा बिना कहे ही दर्शक यह कह दे कि सूका के साथ अच्छा नहीं हुआ तो नाटक अपने में सफल है और ऐसा ही इस नाटक में हुआ है। भगौती का चरित्र एक कठोर और स्त्री के प्रति क्रूर स्वभाव वाले पति का है। लेखक की उसके साथ भी सहानुभूति है, यह सोचकर कि यह क्रूरता परिस्थिति और वातावरण की देन है। सफलता इस बात में है कि दर्शक भी भगौती से सहानुभूति रखता है, तरस खाता है, उसकी नासमझी और स्वभावगत विसंगतियों पर। ऐसा ही हर चरित्र के साथ हुआ है। लेखक के भानस में जो चित्र रहा है, वही मंच पर उभरा है और वही दर्शक ने अनुभव किया है। इस बात का गौरव नाटककार, निर्देशक और अभिनेता तीनों पर जाता है।

अन्त में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात जो इस नाटक के सम्बन्ध में मुझे कहनी है, वह यह कि नाटक के रंग कार्यशाला में प्रशिक्षायियों द्वारा अभिनीत किया गया। यह सच है कुछ अभिनेता पहले से ही विभिन्न रंगमंचों से सम्बन्धित थे, लेकिन जिस प्रकार उन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थवादी रंगमंच की समझा, आत्मसात् किया और मंच पर उसे दर्शाया, वह अपने आप में अनोखी उपलब्धि है। इस प्रकार की रंग कार्यशालायें यदि देश के विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित की जायें और उस क्षेत्र विशेष के ही कथानक को लेकर वहीं के चरित्रों और दृश्यों के माध्यम से गहराई में पैंढ़ी समस्या को उभारा जाये तो हिन्दी रंगमंच का बहुत

बड़ा कल्याण हो। परन्तु उसके लिए उतना ही बड़ा और ध्येय समर्पित व्यक्तित्व चाहिए, जितना बड़ा लक्ष्मीनारायण लाल का है। इक्कीस दिनों के इस नाट्य शिविर में मैंने उन्हें बहुत नज़दीक से देखा है—जो भाव, जो दृष्टि और कार्यशैली उनकी है, उसके विषय में मैं फिर कभी लिखूँगा। यहाँ बस, इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि यह मेरा और मेरे साक्षरता निकेतन का सौभाग्य था यह नाट्य यज्ञ यहाँ सम्पन्न हुआ।

३१-३-१९८०

विश्वनाथ सिंह
साक्षरता निकेतन, आलम बाग,
लखनऊ-५

ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी नहीं, वास्तविक रंगमंच

—लक्ष्मीनारायण लाल

ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी नहीं, वास्तविक रंगमंच—जब मैं यह बात कहता हूँ तो जीवन को एक विशेषण के साथ जोड़ रहा हूँ अर्थात् जीवन जो सामान्य है, उसकी बात नहीं कर रहा हूँ, जीवन को एक हिस्से में बाँट कर नहीं, अलग कर बात कर रहा हूँ—ग्रामीण जीवन। क्योंकि जीवन तो एक ही है, चाहे वह शहर में हो, चाहे गाँव में हो या आदिवासी क्षेत्र में हो, चाहे दूरदराज किसी जंगल में हो। एक ही जीवन सत्ता चारों तरफ कार्यरत है। जीवन की जो प्रकृति है वह एक ही तरह की सर्वत्र है। लेकिन बात को समझने के लिये ग्रामीण जीवन को अलग कर रहा हूँ, जैसे एक ही राग है, एक ही संगीत है, लेकिन उस पूरे संगीत को समझने के लिए कोई मालकोंस राग अलग करता है, राग देश अलग करता है, राग दरबारी अलग करता है।

यह जो ग्रामीण जीवन है, यह क्या जीवन है? और आप, हम चूंकि सारे-के-सारे लोग ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं, गाँव से आये हुए हैं, इसलिए एक विशेष दृष्टिकोण से गाँव को देखते हैं, हमारे मन में यह आ चुका है कि गाँव एक ऐसी जगह है, ग्रामीण जीवन एक ऐसा जीवन है जो कि द्वितीय कोटि का है, यह मानस में आ चुका है। बचपन में पढ़ता था तो बाद-विवाद प्रतियोगिता में यह विषय दिया जाता था—गाँव का जीवन अच्छा है या शहर का? इस पर बाद-विवाद होता था। कोई उसके पक्ष में बोलता था, कोई विपक्ष में बोलता था। लेकिन अब यह विषय नहीं दिया जाता। इसलिए नहीं दिया जाता कि अब जैसे सिद्ध हो गया है कि ग्रामीण जीवन द्वितीय कोटि का है। प्रथम कोटि का जीवन शहर का है।

एक बड़ी ऐतिहासिक घटना हमारे जीवन में थी है। आजादी के बाद जो हमने कल्पना की थी भारतवर्ष की, वह कल्पना संजोग से ऐसी कर दी गयी जो कि अपेक्षाकृत पश्चिमी थी अर्थात् विकास का आधार हमने पश्चिम का मानदंड

द :: अंधा कुआँ

मान लिया। यह चिचित्र संयोग था कि गांधी, जिन्होंने स्वतन्त्र भारत के बारे में सपना देखा था, उन्होंने सर्वथा दूसरे प्रकार के जीवन की कल्पना की थी और वह जीवन कल्पना थी—ग्राम स्वराज्य की। ग्राम स्वराज्य को आधार बनाकर वह पूरे-के पूरे स्वतन्त्र भारत की रचना करना चाहते थे। उस रचना का जो जो मेरुदण्ड है, जो आधार है वह गांव है और गांव का मनुष्य है। बहुत विस्तार से गांधी जी ने इस पर काम किया और स्वप्न देखा ग्राम स्वराज्य का। लेकिन कुछ ऐसी घटनायें थीं कि गांधी की उस बात से सारा-का-सारा ध्यान हटकर शहर की तरफ चला गया। मतलब क्या हुआ कि हाथ के स्थान पर मशीन आ गई। दूसरी चीज, गांधी जी ने जिस ग्राम स्वराज्य की कल्पना की थी उसकी बुनियाद में अपनी भाषा, अर्थात्—जो जिसकी मातृभाषा है उसको आधार बनाया था। तीसरी चीज, जो भी जिस जीवन से आया है वह उस जीवन से जुड़े और जब आदमी अपने जीवन से जुड़ता है तो जितने महत्वपूर्ण तत्व हैं उसके भीतर वे सब उभर कर प्रकट होते हैं। जब आदमी अपने जीवन को जीता है तो बहुत बड़ी घटना उसके जीवन में घटती है। उसमें फूल और फल आने शुरू होते हैं। जितने भी लोग हैं जितनी संभावनायें आप सब में हैं, आप फल-फूल नहीं रहे हैं, क्योंकि आपकी जो जड़ है, जहाँ से उसे खुराक मिलनी चाहिए, मिट्टी मिलनी चाहिए, हवा मिलनी चाहिए वह नहीं मिल रही। आप एक ऐसे वृक्ष हैं, आप ऐसे पौधे हैं, जो कि अपनी जमीन से कटे हैं, उखड़े हैं। इसीलिए आप देखते होंगे कि आदमी जैसे अपनी जगह पर नहीं है। जो आदमी अपनी जगह पर नहीं होता उसकी दो विशेषतायें आप देखेंगे। पहली बात तो वह नकारात्मक होता है। हर चीज की वह आलोचना करेगा, हर चीज में बुराई देखेगा, क्योंकि उसके मानस में तो टूटने का उखड़ने का दुःख है जिसको वह नहीं जानता। दूसरी चीज वह कुम्हलाया, मुर्झाया, उदास, निराश रहता है क्योंकि स्वभावतः उसको अपना रस, अपनी खाद नहीं मिल पा रही है।

इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ता है कि उसमें रचनात्मक शक्ति गायब हो जाती है; और जब रचनात्मक शक्ति गायब हो जाती है तो उसी का नाम है कि उसमें फूल नहीं आ रहे, फल नहीं आ रहे। और किसी भी मनुष्य में चाहे वह रचनाकार हो या मामूली आदमी हो—ये दो चीजें आना बहुत ज़रूरी हैं। पहले तो पौधा हरा-भरा रहे। दूसरे, उसमें फूल लगना है। लेकिन फूल ही लग कर न रह जाय, उसमें फल लगना, और फल लगना अपने आप में पूरा नहीं है—उस फल में रस आना है। रस इसलिए कि उस फल में जो बीज तैयार हो रहा है वह पके और जब वह पक जाता है, रस से पकता है बीज, तब वृक्ष में से वह पका हुआ फल सहज ही गिरता है और किर एक नये पौधे को जन्म देता है। यह एक संपूर्ण-सार्थक जीवन है और यह तभी पूरा होता है जब आदमी अपनी जमीन से, अपनी अस्मिता से जुड़ा हो। अपने मूल से लगा हो।

आजादी जब हमें मिली तो यह देश एक रेगिस्तान जैसा था, यहाँ की अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा, इतनी लम्बी गुलामी की बजह से और आजादी की लड़ाई लड़ने की बजह से सब टूट-फूट गया था, सब अस्त-व्यस्त हो गया था। एक तरह से रेगिस्तान जैसा हिन्दुस्तान था। उस हिन्दुस्तान में जब हमने पश्चिम की मशीन को उद्योग और जीवन प्रतिमान को आधार माना तो हमने रेगिस्तान में कुछ नखलिस्तान बना दिए; जैसे नयी दिल्ली, बुकारो, चण्डीगढ़, राउरकेला आदि। तो कल्पना कीजिये इस प्रतिमान के आधार पर जब रेगिस्तान में आदमी भूखा प्यास हो और कहीं नखलिस्तान दिखे तो रेगिस्तान का हर आदमी स्वभावतः भागकर उस नखलिस्तान में आयेगा। आप क्यों अपना गाँव छोड़ लखनऊ जाना चाहते हैं, क्योंकि नयी दिल्ली जाना चाहते हैं, क्योंकि वहाँ छाया है, वहाँ हरियाली है, वहाँ नल में पानी आता है, वहाँ कोई नौकरी-चाकरी कुछ दिन में मिल ही जाती है। वहाँ कुछ न-कुछ पहन-ओढ़कर हम अपने आपको दिखा सकते हैं, कुछ हाथ पैर मार सकते हैं, न कुछ हो तो किसी औरत के गले का गहना छीनकर चार छः दिन सिनेमा देख सकते हैं। अर्थात् कुछ छाया है वहाँ पर।

तो स्वतन्त्र भारत में कुछ नखलिस्तान बना दिये गये हैं जहाँ सारे रेगिस्तान के बाशिन्दे पहुँच जाना चाहते हैं। और चूंकि नखलिस्तान में जगह बहुत कम है, दो चार खजूर के पेड़ हैं, एक-आध कुआँ, और चूंकि रेगिस्तान का भाग हुआ आदमी वहाँ पहुँच गया है इसलिए उस नखलिस्तान का भी सत्यानाश हुआ है। होना ही था। और उस रेगिस्तान रूपी गाँवों से, जहाँ से छोड़-छाड़कर हम भागे हैं, वहाँ के प्रति हमारा दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया है। हमने सोच लिया कि यह तो रेगिस्तान है, बिल्कुल बेकार की चीज है। और जब हम उस नखलिस्तान में सारी सुन्दरता नहीं पाते तो उसको भी तोड़ना शुरू करते हैं। उसको भी बरबाद करना चाहते हैं। और जब आदमी तोड़ने और बरबाद करने की दिशा में जाता है तो रचना कहाँ से हो, रचना कौन करे? रचनाकार की पहली विशेषता होती है कि वह सुन्दरता को ढूँढ़ता है। वह हर चीज में चाहता है कि आनन्द मिले। लेकिन नहीं मिलता क्योंकि हम अपने मूल से अलग हो गये हैं। पर हमें अपना वह गाँव बहुत याद आता है। जन्मभूमि छिपकली है, पूँछ काट दीजिए तो पूँछ बहुत देर तक क्यों तड़पती है? क्योंकि मूल से कट गई है। जो अपने मूल से कटा होता है वह तड़पता है और तड़पता हुआ आदमी न कुछ ले पाता है, न कुछ दे पाता है और न कुछ कर पाता है, न आनन्द ले पाता है। अपने मूल से कटा हुआ आदमी बहता है—केवल बहता है—समय के सैलाब में, काल की हवा में बहता है। दुःख-संघर्ष में लड़ता नहीं, बहता है—आँसुओं—भावनाओं के जल में। अपना क्या है, मैं क्या हूँ—यह नहीं देखता—दूसरों के पास क्या है—यह निहारता

है। देखता नहीं निहारता है। और दैन्य से भरा रहता है।

वह यह नहीं जाना-देखना चाहता कि कैसे अठारहवीं सदी के अंत में (१७६३) बंगाल-बिहार-बनारस तक 'जमीन का स्थायी बन्दोबस्त' कर ग्रामीण जीवन में पहली बार जीवन की बरबादी का एक अभूतपूर्व कदम उठाया गया। इस बंदोबस्त के कारण जमीन पर ग्रामवासियों का प्राकृतिक मालिकाना हक जाता रहा और एक नया जमींदार वर्ग पैदा हुआ। यह जमींदारी व्यवस्था हमारे अवधि में सन् १८५७ के बाद आयी। इस जमींदार वर्ग को पैदाकर अंग्रेजों ने पहली बार अपनी सरकार की सामाजिक आधार की सूचिट की। इसी आधार को मजबूत और ठोस बनाने और दूसरी ओर यहाँ के लोगों को निर्मल बनाने—उखाड़ने-तोड़ने के लिए जिस कार्य-पद्धति का उन्होंने विकास किया उनमें नयी शिक्षा, नयी जीवन दृष्टि, साहित्य के नये मानदंड, आदर्श और यथार्थ के अपने प्रतिमान उन्होंने प्रतिष्ठित किये। अंग्रेज जिस दुनिया से आया था वह दुनिया थी बुद्धिवाद, विज्ञान और भौतिकता की अर्थात् यथार्थवाद की। उसके लिए बैक आफ इंग्लैंड, चर्च आफ इंग्लैंड से ज्यादा महत्वपूर्ण था। उसकी जीवन दृष्टि थी—जीवन का अर्थ था—और अधिक धन, और अधिक व्यापार, शासन, सत्ता और अधिक भौतिक उन्नति और अधिक अधिकार।

यह था उन्नीसवीं सदी का अंग्रेज—विकटोरिया काल की अंग्रेजी सभ्यता—जो 'सौदागरी सभ्यता' के नाम से जानी जाती है।

नाटक और रंगमंच के प्रसंग में इनका जो 'यथार्थवाद' था—स्वभावतः वही यथार्थवाद—यथार्थ के नाम पर हमारे यहाँ सिद्ध और प्रतिष्ठित किया गया। तब इनका यथार्थवाद था—प्रकृतिवाद—यथार्थवाद—अर्थात् 'हूँ मूनजूलोजी'—अर्थात् पशु, जानवर के जीवन और प्रकृति के आधार और उसकी सीमा के भीतर जितनी सच्चाइयाँ और जीवन तथ्य हैं—वही है यथार्थवाद का यथार्थ आधार।

ठीक इसके विपरीत यथार्थ के प्रति हमारा अपना विचार, स्थापना और प्रयोग क्या था?

साहित्य, कला, सौन्दर्य, शास्त्र और सृजन-प्रयोग क्षेत्र में यथार्थ के लिए हमारा अपना 'शब्द' हमारी अपनी, निजी 'अभिव्यक्ति' क्या थी? वह शब्द था 'वास्तव'। यथार्थ हमारा अपना शब्द नहीं है। यथार्थ 'रियलिज्म' का अनुवाद शब्द है। हमारा अपना शब्द है 'वास्तव'। आचार्य रूद्रट (नवीं सदी का प्रारम्भ) के काव्य शास्त्र में 'वास्तव' एक अलंकार है। 'वास्तव' वह है जहाँ वस्तु-स्थिति, चरित्र, किया, स्वभाव और परिवेश—सब उसमें सन्निहित है। 'वास्तव' की ही अभिव्यक्ति क्षेत्र में हमारे यहाँ अन्य अलंकार प्रतिष्ठित थे—उत्प्रेक्षा, उपमा और श्लेष। 'वास्तव' अलंकार से लेकर ये अन्य तीनों अलंकार जिस काव्य-प्रकार में हमारे यहाँ किपुल भाव में प्रयुक्त हुए हैं—वे हैं—कथा, आख्यायिका और लोक नाट्य।

'वास्तव' अलंकार के समान्तर जो दो अन्य अलंकार—'जाति अलंकार' और 'स्वभाव अलंकार' हमारे यहाँ वर्णित हैं—उन सब के लक्षणों को ध्यान में रखकर 'वास्तव' के क्षेत्र में जो जीवन तत्व, भाव, सत्य आते हैं—वे हैं—कल्पना, अतिशयोक्ति, वक्रोक्ति, आशायें, आकांक्षायें, मानव प्रकृति के अंतरंग-बहिरंग सारे आयाम, स्थूल और सूक्ष्म भाव, प्रकट और अप्रकट मनोदशायें, स्वप्न और मूर्छा, आनन्द और विषाद—सारा हृदय पक्ष।

'यथार्थ' के अंतर्गत हमारा यह 'वास्तव' कभी नहीं आता। किसी तरह नहीं आ सकता। हाँ 'वास्तव' के अंतर्गत यथार्थ एक तत्त्व अवश्य है।

पर जैसे हिन्दुस्तान ब्रिटिश पूँजीवादियों का गुलाम हुआ, स्वभावतः ठीक उसी प्रकार हमारा 'वास्तव' उनके 'यथार्थ' से पराजित हुआ।

नाट्य क्षेत्र में इस युद्ध की आखिरी लड़ाई संपूर्ण रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने और आंशिक रूप में जयशंकर प्रसाद ने लड़ी। मेरे समय में इस लड़ाई का महत्व-पूर्ण दस्तावेज और प्रमाण उपस्थित किया नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर और आचार्य श्री दग्धरथ ओझा ने ('पारंपरिक रंगमंच'—'प्राचीन भाषा नाटक')।

हमारे यहाँ 'वास्तव' का क्षेत्र इतना असीम, इतना संपूर्ण मानवीय, इतना तर्कातीत, बुद्धि के परे, प्रज्ञा और कल्पना लोक तक, क्यों कैसे सिद्ध हुआ? क्योंकि यहाँ मानव-विभूतियों के साथ-ही-साथ दैवी विभूतियों, चरित्रों, और उनके कार्य-व्यापारों का संयोग और विस्तार है।

पर हम पर जो दुर्घटना घटी है वह केवल अंग्रेजी विपत्ति—बहिरंग दुर्घटना ही नहीं है—हम पर अंतरंग दुर्घटना भी घटी है। और वही मूल दुर्घटना है।

शूद्रक और विशाखदत के संस्कृत नाटकों को पढ़कर, जैन आचार्य हेमचन्द्र के विचार जानकर, अपने तमाम पारंपरिक-लोक-शास्त्रीय नाट्य और नृत्य को देखकर अब यह अनुभव होता है कि हमारे यहाँ 'नाट्य' की केवल एक परंपरा, एक प्रतिष्ठान हीं दहीं था जिसके अधिष्ठाता हैं भरत मुनि और उनका शास्त्र है 'नाट्यशास्त्र'। उनसे भी पूर्व दो अत्यन्त शक्तिशाली लोक-नाट्य परम्परायें थीं—

- ब्रह्मा और
- कोहल की।

ब्रह्मा और कोहल की वे दोनों नाट्य परम्परायें लोक और लोक नाट्य, लोक धर्मितायों की अनन्त विभूतियों का शास्त्र था—जिनकी जीवन दृष्टि यों कि 'लोक' महत्तर है, श्रेष्ठतर है शास्त्र से। लोक सृजनकर्ता है, प्रयोक्ता है। लोक 'लङ्घ' है—शास्त्र लक्षण है। समस्त चौसठ कलायें लोक सृजन हैं।

इसी महत्व प्रसंग में 'ग्राम्य' का अर्थ 'मधुर' है 'मुन्दर' है। पर आगे चलकर जब 'लोक' हमारे शास्त्र से पराजित और शास्त्र के अधीन हुआ तो 'ग्राम्य' को

काव्यशास्त्र में एक दोष माना गया।

पर इससे भी पहले वह गम्भीर दुर्घटना भरत के नाट्यशास्त्र में हो चुकी थी जहाँ उन्होंने नाट्य को 'लोक' से काटकर 'अभिजात्य', 'गोष्ठी', 'थ्रेष्ठी', 'प्रासाद' और 'शास्त्र' से जोड़ दिया।

जबकि नाट्य क्षेत्र में—मानव मनोदशायें, भाव का उत्कर्ष-रस और रस-सिद्धि की कल्पना और प्रतिष्ठाता, भाव लोक से आया शास्त्र में। शास्त्र से कभी कुछ लोक में नहीं गया। यही है 'वास्तव' हमारा।

पता नहीं भरत ने हमारी कितनी लोक-नाट्य परम्पराओं, धर्मिताओं को छोड़ दिया है। 'दस रूप' नहीं, पता नहीं कितने असंख्य रूपक रहे होंगे हमारे। रूपक और उपरूपक—इस वर्गीकरण से ही स्पष्ट है कि जो लोक-नाट्य प्रकार हैं; जैसे

- नाटिका
- प्रकरणिका
- सट्टक
- त्रोटक
- गोष्ठी
- हल्लीस आदि अठारह प्रकार—इन्हें रूपक से नीचे उपरूपक की संज्ञा दी है।

यद्यपि नाट्यशास्त्र में भरत इस सत्य को नहीं भला पाये हैं कि वास्तविक नाट्य क्षेत्र और उसकी प्रेरणा भूमि लोक जीवन है और उसकी वास्तविक कसौटी भी 'लोकचित्त' है। पर नाट्यशास्त्र में और आगे चलकर 'दशरूपक' और 'अभिनन्दर्पण' आदि काव्य शास्त्रों में 'लोक', 'लोकचित्त' और 'लोक-नाट्य' 'लोक धर्मितायें' क्या हैं—इन्हें बिल्कुल छोड़ दिया गया है।

केवल नगर, राज प्रासाद, राजकीय संरक्षण में होने वाली तथा उस युग से सम्मत तथा अभिजात्य दर्शक वर्ग से पोषित नाट्य धर्मितायें स्वभावतः नाट्यधर्मी थीं। इसी का सबूत है कि संस्कृत 'नाटक' नाट्यधर्मी परम्परा और 'नाट्यशास्त्र' का प्रतीक है। पर इस शास्त्रीय नाटक से अलग जो सहज जीवन, सहज उल्लास का, सहज प्रयोग और सृजन का क्षेत्र था, जिसकी समूची रचना पद्धति अकृत्रिम थी, उस लोक-नाट्य का क्या 'वास्तव' था उसे जानने, देखने, समझने के क्या उपाय हैं आज हमारे पास?

आज हमारे इस 'वास्तव' के सामने आधुनिक यथार्थ नहीं, 'यथार्थवाद' खड़ा है। यथार्थवाद—जहाँ मनुष्य बन्दर की ओलाद है, केवल कामवासना और केवल अर्थ का दास है—यही है पश्चिम।

पश्चिम में यह माना गया है कि आदमी जो है वह स्वर्ग से गिरे हुए की

सन्तान है। एडम और ईव की कहानी है न, फल चुराते हुए पकड़े गये तो दण्डित हुए। जो दण्डित होता है उसमें बड़ा कोध होता है, बदला लेने की भावना होती है, बड़ी प्रतिक्रिया होती है। इसीलिए पश्चिम का जो मानस है, उसने विज्ञान की इतनी तरक्की की, उसने अपने प्रसंग में सच्चाई की, यथार्थ की तलाश की। गहरे तह तक गया, क्योंकि उसमें बड़ी भारी चोट है—'मैं गिरा हुआ आदमी'—इसीलिए मारे गुस्से के एटमबम बना लिया, उसने वहिरंग स्तर से ड्रामा-थियेटर की जबरदस्त तरक्की की—इतनी लाइट, इतना स्टेज, इतनी बड़ी ट्रिलिंग कि आप आश्चर्यचकित रह जायें, लेकिन ग्रन्थ क्या बनाया? पूरे पश्चिम के 'रिलिजन' को एक शब्द में कहूँ तो वह है—'टैन कमाण्डमेन्ट्स'। यही तो उनका धर्म है। उस 'टैन कमाण्डमेन्ट्स' के माध्यम से वे अपने थियेटर को देखते हैं। उनका कोई कसूर नहीं है। हर आदमी अपने स्वभाव, अपने धर्म के माध्यम से जीवन देखता है।

'टैन कमाण्डमेन्ट्स' के धर्म से देखने वाला पश्चिम का आदमी जब कालिदास को देखता है तो कहता है, अरे यह क्या नाटककार है, इसमें संघर्ष ही नहीं है। इसमें द्वन्द्व नहीं है, उसमें मारपीट नहीं है। वह कहता है कि अगर दृश्यन्त भूल गया शकुन्तला को तो कप्व कृषि ने क्यों नहीं दुश्यन्त पर आक्रमण कर दिया?

लेकिन हमारे धर्म का सार है, बुनियाद है—'देखना'। हम देखते हैं, हमारा नाट्य दृश्यधर्मी है। सब कुछ यहाँ दृश्य है। अदृश्य को भी दृश्य बनाकर हम प्रस्तुत करते हैं। यही हमारे सारे नाट्य का मर्म है। जांकियाँ रामलीला की, रामलीला की ही नहीं, मन्दिर में जो हमारा ईश्वर है उसकी भी हमने मूर्ति बनायी। मूर्ति बनाकर हमने एक ही वस्त्र-अलंकार नहीं पहनाया, हम दिनभर में कई शृंगार करते हैं, क्योंकि हमारा सारा-का-सारा स्वभाव है, उसको यदि एक बात में कहूँ तो, 'देखना' है। हम देखते हैं। तभी मेरा विश्वास है, यदि भारतवर्ष के जीवन में ऊपर दस आदमी ऐसे पैदा हो जायें जो त्यागी हों और अत्यन्त चरित्रवान हों, तो पूरा हिन्दुस्तान बदल जायेगा। क्योंकि हम देखते हैं। हम अपने बड़ों को जैसा देखेंगे वैसा ही बनने लगेंगे। यह इस देश की विचित्र लीला है और बहुत बड़ी बात है। आज हिन्दुस्तान इस हालत में इसीलिए पहुँच गया है कि उसे कुछ थ्रेष्ठ, सुन्दर, महत्तर देखने को नहीं मिलता। आप देखेंगे कि गाँव का आदमी जब शहर में आता है तो चारों तरफ देखता है। सब का कपड़ा देखता हूँ। हाँ, मैं देखता हूँ और देखते ही चला जाता हूँ। तो यह देखना जो है वही है हमारा नाट्य।

इस प्रकार यह जो दो नाट्य हैं, भारत का और पश्चिम का, इनका यथार्थ अलग-अलग है। पश्चिम का यथार्थ 'कैमरे' में आने वाला यथार्थ है। हमारा यथार्थ, जो कुछ दृश्य-अदृश्य है, सब यथार्थ है। और सबको हम ले आते हैं अपने रंगभंग पर।

कालिदास के 'शाकुन्तलम्' को देखिये—पूरी प्रकृति, पूरा आकाश, पूरी कृतुयें, पशु-पक्षी, नदी नाले, सारे भाव, सारे रस, सब कुछ भरा पड़ा है। पश्चिम का आदमी कहता है कि यह सब भावात्मक है और कुछ नहीं। वह कहता है कि यह भी कोई नाटक है। सच है, वह कैसे समझेगा कि हमारे यहाँ जिन्दगी को काटकर नहीं देखा जाता। यह सम्पूर्णता में देखी जाती है। इसीलिए हमारे यहाँ शब्द है—नाट्य अर्थात् वक्षु का यज्ञ, अँखों का यज्ञ है यह नाट्य। कितनी बड़ी कल्पना है। यज्ञ में दान है तप है, अग्नि है, आहुति है; संगीत है, मंत्र है, पूजा है, चारों फलों और पुरुषार्थों की प्राप्ति है। इस तरह से हमने जीवन को कभी काटकर नहीं देखा। हमेशा सम्पूर्ण देखा। यह गाँव है यह शहर है, यह देखा ही नहीं।

गाँव में क्या रह गया है अब? गाँव के बारे में तो ख्याल हो ही गया कि यह द्वितीय कोटि की जगह है। यह रेगिस्तान है, यहाँ कुछ नहीं है। लेकिन जो है उसको तो आपने देखा ही नहीं। क्योंकि आपकी निगाह में शहर बसा हुआ है। लेकिन आपकी अपनी आँख में जो है वह क्या है? आपकी आँख में तो आपकी माँ है—आपकी बहन है। आपकी आँख में आपका गाँव है, जहाँ आप खेले हैं—उस गाँव में जो गाने सुने हैं वह आपकी आँख में है; गाँव में आप ने मार खाई है। आपके पिता ने, अध्यापक ने आप को भारा है—वह है आपकी आँख में। आपने जो कष्ट उठाये हैं वहाँ—वह है आपकी आँख में। आप किसी के खेत में चले गये होंगे तो खेत वाले ने गाली दी होगी। ये जितने कष्ट उठाये हैं आपने, वही आपका जीवन, उससे आप भाग नहीं सकते। इसलिए देखना ही धर्म का मर्म है। यही नाटक है। यही 'वास्तव' है हमारा। यह नहीं है कि देख तो रहे हैं आप अपना गाँव—लेकिन दिमान में है दिल्ली का नाटक। आप जहाँ हैं वही हैं—जिसे आप देख रहे हैं उसे स्वीकार कर रहे हैं—यही है 'देखना'। गाँव माने, आपने जितना जिया है। जितना आपको मिला है उतना ही है आपका गाँव। जीवन उतना ही है जितना आपने जिया है, भले ही आप सौ वर्ष के हों। लेकिन उसमें वास्तविक जीवन उतना ही है जितना आपने जिया है, देखा है, सुना है, भोगा है। इसलिए जीवन जीना माने 'देखना'—स्वीकार करना। और उसका पूरा रस लेना, पूरा अनन्द लेना। जीने का मतलब है पूरी पाँचों कर्मन्दियों—पूरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से अनन्द लेना।

अब गाँव, अपनी जन्मभूमि आपको क्यों नहीं मिल सकती? पहली चीज़ तो आप जो हैं वह अपने स्थान से उखाड़कर शहर पहुँचा दिये गये हैं। दूसरी चीज़, यहाँ आपने जो भी देखा है—जिया है उसे स्वीकार नहीं किया है। हम गाँव से शहर की तुलना करते हैं। शहर से पश्चिम की तुलना करते हैं। इसी तुलना में हमारा रंगमंच हमारी ही नजरों में हीन हो गया। जहाँ तुलना है, वहीं हीनता और दीनता है।

यथार्थ क्या है? हमारे सामने जो भी चीज़ें हैं, वे क्या यथार्थ

हैं? सच्चाई यह है जैसे आपके सामने खड़ा बातें कर रहा है। आप बैठे हैं मैं बात कर रहा हूँ, कनाट प्लेस में घूम रहा हूँ—यह सत्य नहीं है—यथार्थ भी नहीं है। यह एक सच्चाई है। ये तीनों बातें बड़ी स्पष्टता व वैज्ञानिक ढंग से समझ लेना आवश्यक है।

हम यहाँ बातें कर रहे हैं, पर सत्य यह ही सकता है कि आप और मैं कहीं अन्यथा हैं। सच्चाई केवल इन्द्रियजन्य होती है। हम यहाँ बैठे हैं, यह भौतिक तथ्य है—भावनात्मक सत्य नहीं है। तथ्य इन्द्रियजन्य होता है—दृष्टिगत होता है—क्योंकि हम आँखों से देख रहे हैं—कि आप बैठे हैं। आप मुझे देख रहे हैं, मैं बोल रहा हूँ और आप सुन रहे हैं। लेकिन क्या आप को अनुभव हो रहा है या आप अनुभव कर रहे हैं कि आप बैठे हैं—मैं जो बोल रहा हूँ—उसे आप सुन रहे हैं? या आप अंधा कुआँ में अभिनय कर रहे हैं—भगौती बने हुए हैं—इन्दर बने हुए हैं—यह बात केवल सच्चाई हो सकती है—लेकिन यथार्थ नहीं हो सकता। क्योंकि सच्चाई से यथार्थ तक पहुँचने की एक लम्बी यात्रा है और यथार्थ से सत्य तक जाने की उससे भी लम्बा लम्बी यात्रा है। ये तीन मंजिलें हैं सच्चाई, यथार्थ और सत्य। ये तीन यात्राएँ हैं जिनकी ओर हम इशारा करेंगे। यह सच्चाई है कि आप भगौती का अभिनय कर रहे हैं—लेकिन यह अनुभव कैसे होगा?

अनुभव में दो शब्द हैं—अनु और भव। अनु माने पीछे चलने वाला। भव माने जो हो रहा है। पूरे अनुभव शब्द के माने, हम जो काम करते हैं उसमें जो भाव हैं वह कौन वहन करता है—कौन अनुभव करता है? भगौती की भूमिका करना एक कार्य है, लेकिन भगौती की जो भूमिका कर रहा है—वह किस धरातल पर जी रहा है? वह किस स्तर की चेतना में है? चेतना का स्तर ही अनुभव का स्तर है, क्योंकि चेतन्य या चित्त के द्वारा ही सम्पूर्ण घटना का अनुभव किया जाता है। लेकिन यहाँ जो अनुभव शरीर कर रहा है वह पूरे अनुभव का मात्र तीस प्रतिशत है। शरीर का भोजन करना या किसी काम में लगना यह सब केवल कुछ ही प्रतिशत मात्र है—मात्र इतना अनुभव है—कि जो कुछ हम कर रहे हैं वह सब इन्द्रिय-जन्य है। इसमें दूसरा तीस प्रतिशत वह है कि हम उसे किस भाव से कर रहे हैं इसलिये वहाँ अगर शरीर की किया के साथ भाव भी मिला हुआ है तो यह साठ प्रतिशत हो गया। लेकिन अगर हम इस दिशा में अपने चित्त को चैतन्य को भी मिला दें—यानि जब हम चैतन्य होकर कार्य करते हैं तो कार्य पूर्ण हुआ और तभी यह पूर्ण अनुभव हो सकेगा। उदाहरण के लिए हम अक्सर कहते हैं—उस अमुक चीज़ को देख लिया लेकिन हाय मन नहीं भरा—ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आप उस को देखते समय पूर्ण रूप से जगे ही नहीं थे। केवल आपका शरीर मात्र जगा था। अन्य दोनों तत्वों के बे पक्ष बे अंश जगे ही नहीं थे, सो रहे थे। इसीलिए आप उस चीज़ की याद करके बार-बार आह! करते हैं। आप बार-बार उस दृश्य

को पुनः देखना चाहते हैं। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि आपको कुछ समय के लिए एक जीवन का, एक अंश मात्र मिला, और आप उसे पूर्ण रूप से पुनः देखने-मुनने की तमन्ना करते हैं। इसी परिपेक्ष्य में नाटक फिर से देखते, फिर से लेने, फिर से अनुभव करने के और रंगमंच को ग्रहण करने और प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। यह एक मिलन का समित होने का भाव है। नाटककार, अभिनेता, निर्देशक, रंगशिल्पी, दर्शक समाज सब का मिलन है। गाँव में शहर मिल रहा है। शहर से गाँव। इन्हें सारे तथ्यों से यथार्थ बन रहा है। इन्हें अनुभवों से सत्य सामने आ रहा है। हम जब मिलते हैं—तो उस मिलन का एक अद्भुत आनन्द है। लेकिन उस आनन्द के लिए भी चैतन्य का होना आवश्यक है।

पर चैतन्य को सुलाये रखने में दो वृत्तियों को बड़ा आनन्द आता है। उसमें एक तो अहंकार है, वह चैतन्य को सुलाता है। चैतन्य रहने पर वह अपने आस-पास घट रही घटनाओं के प्रति अपनी हिस्सेदारी मानता है। हिस्सेदारी मानता है तो उसमें जिम्मेदारी की भावना आती है। इसीलिए व्यक्ति चैतन्य नहीं होना चाहता। इसलिए कि वह भाव से नहीं जगा होता है—और बुद्धि से भी नहीं जगा होता है। हम वहाँ एकमात्र शरीर से जगे होते हैं। इसमें होता यह है कि भाव से जगे न होने पर हम में दृढ़ धैर्य होता है।

केवल शरीर व इन्द्रिय से जगा होना, जगा होना नहीं है। केवल शरीर व इन्द्रिय मात्र के धरातल पर जगना पशुता के धरातल से जगना है। लेकिन मनुष्य का धरातल और उसमें भी उसी सर्जक (कलाकार) के धरातल से जगना सम्पूर्ण जगना है। उसमें अनुभव का पूर्ण धरातल है क्योंकि उसमें भगवानी के चरित्र की भूमिका का अभिनय करते-करते पहले अपने अहंकार, अपने 'मैं' को तिरोहित करना, यह बहुत बड़ा काम है। मैं का भाव तो अपने ऊपर चौबीस घंटे बैठा हुआ है। इस भाव को हटाकर अपने ऊपर से मैं को उतार पाना, बड़ी तपस्या है। आपकी अपनी गाँठ हैं। सबके अपने संस्कार हैं। उन्हें दूर हटाये बिना भगवानी की रचना नहीं की जा सकती।

इसलिए हमें तीन चीजों की आवश्यकता है—जिनमें मूल है चैतन्य। जितने चैतन्य आप होंगे उतना ही जीवन जियेंगे। दूसरी चीज है—बुद्धि, भाव व शरीर। इन धरातलों पर आप जितना जगे रहेंगे उतना ही पूर्णत्व होगा। शरीर रूपी रथ पर ही भाव बैठा हुआ है। उसी के अन्दर अनुभव करने वाला बैठा है, इसी के भीतर जो तथ्य है वह बैठा हुआ है—क्योंकि सब कुछ इसी संयोग में हैं। अब आपके मन में, यह प्रश्न तैर रहा होगा कि यथार्थ और अनुकृति में अन्तर क्या है?

हर मनुष्य में भगवान् ने दो दरवाजे बनाये हैं—एक दरवाजा बाहर और एक दरवाजा भीतर। बाहर के दरवाजे की भी कुन्डी आपके हाथ में है और भीतर के दरवाजे की भी कुन्डी आपके हाथ में है। आप जब इस धर से बाहर जाना चाहें

तो कुन्डी छोलकर भीतर जायेंगे और भीतर की कुन्डी बंद कर लें। इसी को कहते हैं—घर। घर माने जिसमें दो कुन्डियाँ लगी हैं। जेलखानों में सिर्फ बाहर कुन्डी होती है। यह अन्तर है। और यही अन्तर एक मनुष्य और कलाकार में है। यही अन्तर है एक संत और साधारण मनुष्य में। मनुष्य है—दो कुन्डियाँ हैं उसके पास, दो ताले हैं और दोनों तालों की कुंजी उसके पास है। इसलिए चैतन्य हुए आदमी का एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि वह अपना स्वामी होता है।

इसी चैतन्य के जागृत होने पर नाट्य लेखन होता है, नाट्य निर्देशन होता है और अभिनय किया जाता है, नाटक देखा जाता है। जो जगा नहीं है वह नाटक क्या देखेगा, वह तो नाटक की बुराई देखेगा।

अनुभव सूक्ष्म है, अनुभव रस है। लेकिन जो है वह दृश्यगत है। सच्चाई को समझने में दिक्कत नहीं होती लेकिन सच्चाई को धारण करना मुश्किल है। आपके जीवन में जो घटना घटती है उसको ऐसा समझिये कि वह कुछ लेकर आयी है आपके पास। वह कुछ देने आती है। लेकिन होता विलुप्त उल्टा है, कोई आया तो हम डर जाते हैं। पता नहीं क्या लेने आया है, मांगने आया है। ऐसा समझ कर तो हमने अपने दरवाजे बन्द कर लिए। जब आपने दरवाजे बन्द कर लिये तो आदमी आयेगा कहाँ से, देगा कहाँ से? सच्चाई और अनुभव तो हर आदमी के पास होता है लेकिन एक कलाकार के स्तर पर सच्चाई और अनुभव में जो सबसे पहले चीज सम्मिलित होती है वह है उसका संस्कार। संस्कार किसे कहते हैं? जो भी घटना आपके बचपन में घटी वही आपका निर्माण करती है। आदमी कुछ नहीं है सिर्फ अपना शिशु है। वही बचपन का जीवन भूलाधार है। इसी को संस्कार कहते हैं। एक संस्कार माता-पिता से मिलता है और दूसरा गुरु से। यहीं दो ध्रुव हैं संस्कार के। इन दोनों ध्रुवों से यदि नफरत मिली है, मार मिली है तो जीवन समाप्त हो जायेगा। तुलसीदास का उदाहरण हमारे सामने है। इन दोनों ध्रुवों पर उन्हें अपमान मिला है। जन्म होते ही फेंक दिये गये, भीख माँग कर आते थे रास्ते में लोग लूट लेते थे। अब देखिये इन दोनों ध्रुवों पर उन्हें कुसंस्कार मिला, चोटें मिलीं। लेकिन जब चैतन्य जगा उनके भीतर तो इन संस्कारों को तोड़ा उन्होंने। संस्कार की जो गाँठ थी, कुठा थी, चैतन्य को जाप्रत करके उसे सुलकाया। लेकिन यह काम कोई बिरला ही करता है। बहुधा होता क्या है—आदमी वर्तमान में नहीं रहता, वह हरदम अपने अतीत में रहता है। अतीत इतना बड़ा समुद्र है जो बार-बार आदमी को खींचता है, अपने में डुबोता है। लेकिन सर्जक, कलाकार उसे पार कर अपने पास आता है।

ज्ञान से ही ये सारे संस्कार काटे जाते हैं। इस ज्ञान के ऊपर भी एक चीज है—विवेक। आपने देख लिया, करणा से देखा कि बचपन में पिता ने मुझे इसलिए मारा था कि वह गरीब था। अपनी गरीबी की कुंठा वह कहाँ उतारता? मैं ही था

जिस पर उसने अपनी कुठा उतारी। यह सोचकर आपने सच्चाई को स्वार्थ से न देखकर करण से देखा—यही विवेक है। कलाकार जब इतनी सफाई कर लेता है तब एक चीज और जोड़ता है—कल्पना। कल्पना जोड़ना ही तो रचना है। जो कुछ दिखाई देता है उसके अतिरिक्त क्या दिखाई देना चाहिए, इसकी कल्पना ही रचना है। जो रचनाकार है वह दूसरा ब्रह्म है। क्योंकि जो कुछ संसार में है वह देख रहा है उससे वह सन्तुष्ट नहीं है, प्रसन्न नहीं है, इसलिए वह दूसरी रचना—इन सारी चीजों से मिलकर जो बनती है—उसका नाम है वास्तव, यथार्थ नहीं।

पश्चिम के जो तीन बड़े दार्शनिक हुए हैं पहला डाविन, जिसने कहा कि हम कुछ नहीं, वंदर की ओलाद हैं। इस विचार ने मनुष्य के गौरव को नष्ट किया। दूसरा फायड—जिसने कहा कि मनुष्य के सारे आचरण के पीछे और कुछ नहीं सिर्फ सक्ष है। तीसरा दार्शनिक मार्क्स—जिसने कहा कि मनुष्य ही सारी गतिविधियों के पीछे केवल अर्थ की प्रेरणा है। मनुष्य के सारे संबंधों का आधार धन है, पूँजी है। इस प्रकार पश्चिम के यथार्थ में विश्लेषण का भाव है। खोज का बोध है।

हमारा यथार्थ नहीं, वास्तव क्या है? हमारी बुनियाद है, मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ। और वह एक क्या है—आनन्द है। आनन्द से आनन्द निकला है। और वह पूर्ण निकला है। हमारे यहाँ पूर्ण से पूर्ण निकला है और पश्चिम में खण्ड से खण्ड निकला है। इसलिए वह खण्डित करता चला जा रहा है, एटमबम तक खण्डित करता चला जा रहा है। आनन्द और सम्पूर्णता की भावना भारतीय दृष्टिकोण का मूलाधार है और वही हमारे नाटकों में व्यक्त हुई है। पश्चिम का आदमी यह देखकर परेशान होता है कि यहाँ नाटक सुखान्त क्यों है?

इस संदर्भ में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी रंगमंच जब हम कहते हैं, तब हम अपने उसी अखंड वास्तव को कहते चाहते हैं। हमारे वास्तव में दो चीजें बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमारे यहाँ सब कुछ संगीतमय है। हर चीज हम संगीत के माध्यम से कहते हैं क्योंकि आनन्द से आनन्द निकला है न! सम्पूर्ण से सम्पूर्ण निकला है। संगीत भी आनन्द और सम्पूर्ण ही है। संगीत का 'स' अपने में सम्पूर्ण है, सरगम अपने में सम्पूर्ण है। लोग कहते हैं—इसका 'स' लगा कि नहीं अभी तक। 'स' लगना मानों—उसका सारा शरीर, भाव, बुद्धि, चैतन्य सब एक बिन्दु पर आ गया। शरीर, भाव, बुद्धि और आत्मा यहीं तार हैं। अगर तार ढीले हैं तो 'स' नहीं लगेगा। अगर तार बहुत करते हैं तब भी 'स' नहीं लगेगा। बीच में कहीं वह जगह है जिसकी तलाश करनी है। हर व्यक्ति को अपने-अपने ढंग से वही तलाश करनी है।

दूसरी चीज—अमरता। कोई मरता नहीं है, हमारे यहाँ दिवंगत होता है। मृत्यु की कल्पना हमारे यहाँ नहीं है, हमारे यहाँ हर वस्तु ज्ञानाण्ड का एक भाग है और वह हमेशा है। कभी सूक्ष्म में और कभी कारण में। कभी दृश्य हैं हम, कभी

ब्रह्म। कभी बीज हैं हम, कभी बिन्दु हैं हम। बिन्दु माने कारण हैं हम। तत्व तो मरता नहीं, तत्व तो हमेशा रहता है। केवल उसका रूपांतरण हो जाता है। किसी फूल को देखता हूँ तो लगता है मेरी माँ इसमें है। वृक्ष को देखता हूँ तो लगता है—जो मेरा भाई दिवंगत हो गया, वह इसी वृक्ष में है। इसीलिए हमारे यहाँ हर वस्तु पूज्य है। देव तुल्य है। हमारी जीवन-धारा में एक विचित्र करणा और ममता का भाव है, जिसे पश्चिम का आदमी नहीं देख सकता।

सूका मरी नहीं। दिवंगत हुई। वह मंच पर प्रकट होती है। हमारा लोक नाट्य यथार्थवादी नहीं, वास्तविक रंगमंच है। वह है। सदा रहेगा। जिसके होने पर कोई पदार्थ होने के योग्य होता है, वही एक और संस्कार कहलाता है, दूसरी ओर वही वास्तव है।

—लक्ष्मीनारायण लाल
४ मार्च, १९८१

२० :: अंधा कुआँ

इस “अंधा कुआँ” नाटक का प्रथम प्रस्तुतिकरण साक्षरता निकेतन, लखनऊ द्वारा आयोजित रंगमंच कार्यशाला के सदस्यों द्वारा २६ मार्च, १९८० को साक्षरता निकेतन के खुले मैदान में नवनिर्मित मंच पर संध्या सात बजे, और ३० मार्च, १९८० को रवीन्द्रालय, लखनऊ के मंच पर सम्पन्न हुआ। आयोजक और संरक्षक श्री भगवती शरण सिंह, निदेशक, साक्षरता निकेतन। संयोजक श्री वीरेन्द्र त्रिपाठी।

भूमिका में

(प्रवेशानुसार)

कथाकार	प्रदुमन शर्मा
राजी	श्रीमती नीरजा गुप्ता
मिनकू काका	जी० आर० गुप्ता
भगौती	कौशल शर्मा
सूका	भानुमती सिंह
हरखू मौसिया	उमाशंकर शर्मा
परभू	बी० डी० हींगरा
अलगू	कृष्णा जी
तेजई	अनिल शर्मा
मूरत	विनोद कुमार
विजई	शिव कुमार शर्मा
रामदीन	राकेश दुबे
चिकुरा	मनोज कुमार श्रीवास्तव
जोखन	विजय कुमार सक्सेना
अधारे	दिनेश कुमार
जितई	महेश गहलौत
पांडे	विनयनाथ पांडे ‘किशी’
इंदर	भूपेन्द्र खरबदा
लच्छी	रानी सक्सेना
हीरा	सतीश चित्रवंशी

गायन बून्द : शाखा वन्धोपाध्याय, प्रदीप कुमार सक्सेना, विजय कुमार सक्सेना अशोक कुमार सिंह, ‘भारत’।

भीड़ : राजीव रत्न श्रीवास्तव, शोभना अवस्थी, अरुणा पंत।

प्रस्तुति-दायित्व

दृश्य-बन्ध, प्रकाश, वेशभूषा संयोजन : श्रीमती त्रिपुरारी शर्मा
रूप-सज्जा : भुनेश श्रीवास्तव
मंच-व्यवस्था : राजीव रत्न श्रीवास्तव
प्रस्तुति-अधीक्षक : शेखर वैष्णवी
प्रेक्षागृह व्यवस्था : वीरेन्द्र त्रिपाठी
प्रचार : शिव कुमार शर्मा
स्मारिका : सतीश चित्रवंशी
संगीत-निर्देशन : विश्वनाथ सिंह
रचना, संचालन एवं निर्देशन : लक्ष्मीनारायण लाल

अंधा कुआँ

पात्र

राजी
मिनकू
भगौती
सूका
अलगू
नन्दो
इन्दर
लच्छी
हरखू
तेजर्झ
मूरत
हीरा
रामदीन
जोखन
अधारे तथा
कथाकार, गायक, स्त्री-पुरुष, लोग।

पहला अंक

(मंच के किनारे गायक, वादक और कथाकार बैठे हैं। संगीत उभरता है।)

आहो रामा !
 आहो रामा !!
 पहिले सुमिरन आदि भवानी हो रामा
 आहो रामा……।
 कंठ सूखै न आज सहइया हो रामा
 आहो रामा……।
 चैत अयोध्या रामा जनभ ले
 घर-घर बाजै बधइया हो रामा ।
 आहो रामा……।
 जिरवा कै बौरसी लवंगिया कै पासंग
 सोने के छुरिया से नाखा कटैइवे
 आहो रामा……।
 केहु रे लुटावे अन धन सोनवाँ
 केहु रे लुटावे सोने कै मुतरिया
 आहो रामा ।
 पहिले सुमिरन आदि भवानी हो रामा……

कथाकार : यह है जलालपुर गाँव, जिसे कोई चिरई गाँव कहता है तो कोई गाँव गप्पे। मैं किस्सा कहने वाला हूँ—दास्तानगो। किसी की तरफदारी नहीं करता। सिर्फ किस्सा सुनाता हूँ। यूँ मुझे बहुत किस्से याद हैं, बेशमार……हाँ। लेकिन आज एक किस्सा-कहानी सुनाता हूँ भगौती और सूका का। सच कहूँ यह किस्सा-कहानी नहीं है। एक सच्ची जिन्दगी है सूका और भगौती की। मैं ऐसे नहीं कह सकता—एक थी सूका—एक था भगौती। वे थे और आज भी हैं, हाँ। गाँव के चार जने इकट्ठे हुए—चिलम पीने के बहाने, अलाव तापने, या यूँ ही गप्प-शप्प करने। थोड़ा टुन्न-फुन्न किया और वही सूका-भगौती की बात शुरू। बाप रे, भगौती का गुस्सा……सूका से बदला। थोड़ा गाना-बजाना किया और बीच-बीच में वही कहानी। उन्हीं दोनों की याद, अपनी फरियाद। सूका-भगौती की चर्चा……उन्हीं की बात……हे राम……।

(धीरे-धीरे मंच प्रकाशित होता है। मंच बिल्कुल सूना है। कुछ क्षणों के बाद पृष्ठभूमि में कुछ गिरने और टूटने की आवाज होती है। उसके साथ-ही-साथ किसी पुरुष की क्रोध भरी आवेशपूर्ण फटकार सुनायी पड़ती है। भीतर से भागी हुई राजी दरवाजे से निकलकर दायरों ओर निकल जाती है। भीतर भगौती की फटकार और भी बढ़ती है और एकाएक किसी औरत के रोने और चीखने की आवाज आती है। क्षण भर बाद, बाहर भागी हुई राजी फिर तेजी से बापस लौटती है और दरवाजे के भीतर निकल जाती है। चीख और रुदन से मंच का सारा वातावरण कहर हो जाता है। उसी समय दोहे हुए मिनकू काका आते हैं। तमाशा देखने गाँव की दो औरतें और एक आदमी आ खड़े हुए हैं।)

मिनकू : भगौती ! …ओ भगौती !!
 ओ भगौती (डण्डे से किवाड़ पीटते हैं) अबे ओ रे भगौतिया !!
 (भीतर मारने की आवाज सहसा खत्म हो जाती है, लेकिन भीतर से रोती हुई औरत की आवाज अपनी सारी कहणा के साथ सुनायी पड़ती रहती है। उसी बीच, नरे बदन, केवल धोती पहने, सिर पर अंगोला बाँधे और हाथ में डण्डा लिए अन्दर से हाँफड़ा हुआ भगौती आता है। उसकी साँसें क्रोध और आवेश से अब तक फूल रही हैं, और वह पसीने में तर है। मिनकू बढ़कर उसके हाथ

से डण्डा छीन कर फेंक देते हैं।)

मिनकू : क्या उसकी जान ही लेने पर तुल गया है !

(भगौती चुप है, वह सिर के अंगोंछे को खोलकर अपने मुख का पसीना पोंछने लगता है।)

मिनकू : लाज नहीं आती। एक बार हो गया, दो बार हो गया, डरा-धमका दिया, लेकिन बेहया की तरह यह क्या ढंग है ? (भगौती गम्भीरता से उस पर एक दृष्टि डालकर फिर अपने हाथ-पैर की धूल झाड़ने लगता है।)

मिनकू : घर क्या है, कसाई का खूंटा बना रखा है।

(भगौती बढ़कर चुपचाप चौखट के बाएँ मोड़े पर बैठ जाता है।)

मिनकू : सूका ने हज़ार कसूर किया है, लेकिन उन कसूरों की जिम्मेदारी किस पर है ? तुम अपने कर्म को क्यों नहीं देखते ?

[भगौती चुप है]

मिनकू : रोज़-रोज़ बेरहम की तरह सूका को मारते हो ! कहीं कुछ हो जाय, औरत-अबला का मामला, कहीं उसे ठाँव-कुठाँव लग जाय, फिर सोचो, क्या होगा (रुक कर) लेने के देने पड़ जायेंगे। गाँव के बढ़ावा देने वाले तुम्हारे दोस्त तब काम नहीं आयेंगे, फिर बेटा ! तुम्हें छठो का दूध याद आ जायेगा।

भगौती : यह बात नहीं काका, तुम समझते नहीं !

मिनकू : मैं रत्ती-रत्ती समझता हूँ, सिर्फ यही नहीं समझता कि अगर तुम्हें सूका को रोज़-रोज़ हलाल ही करना था, तो उसे पाने के लिए तुम उतने दीवाना क्यों हुए ?

भगौती : दीवाना ?

मिनकू : हाँ, दीवाना नहीं तो क्या ! पाँच बार तुमने सूका के लिए बारण्ट कटाया, न जाने कितनी बार पुलिस को घूस दिये। अन्त में दस्ती बारण्ट लिया, पुलिस के साथ खुद कलकत्ता गये, फिर कहीं जाकर सूका गिरफ्तार हुई।

भगौती : न गिरफ्तार होती तो बच के जाती कहाँ ?

मिनकू : मुकदमे की पैरवी में गाँव से कचहरी का रास्ता नापते-नापते हम सब के पैर धिस गये। आखिर यह सब क्यों ? किसलिए ?

भगौती : इसीलिए कि मैं अपनी बेइज्जती का बदला लूँ।

मिनकू : सूका से बदला !... लेकिन भगौती याद रखो, खूंटे में बाँधकर गऊ मार रहे हो।

भगौती : तुम सुकिया को गऊ कहते हो ? उस डायन को गऊ !

मिनकू : लेकिन बीती हुई बातों और अब रोज़-रोज़ सूका को मारने से क्या मतलब ? क्या इसी से सब बातें पूरी हो जायेंगी ?

भगौती : पता नहीं !

(जाकर नेसुहे पर बैठ जाता है)

मिनकू : क्या कहा ?

भगौती : (उपेक्षा से) कुछ नहीं, मुझे जो-जो सूझेगा मैं वही करूँगा। मुझे किसी का डर नहीं।

मिनकू : ईश्वर का भी नहीं।

भगौती : किसी का नहीं।

मिनकू : इसका अंजाम भी सोचा है ?

भगौती : मैं सोचता-वोचता कुछ नहीं काका। मेरी खोपड़ी मत चाटो। मुझे कितने सारे काम करने हैं।

(गंडासे से नेसुहे पर धास काटने लगता है।)

मिनकू : काम तो तुझे ज़रूर बहुत करने हैं। सबसे ज़रूरी काम तो वही था, जिसे करने में अभी तक भीतर लगे थे (रुक कर) लेकिन भगौती एक बात याद रख। अगर सूका को इस तरह मारने की हरकत बन्द न की, तो याद रखना बेटा ! सूका से एक दिन फिर हाथ धो बैठोगे और सदा के लिए हाथ मलते रह जाओगे।

भगौती : इसकी कौन परवाह करता है।

(फिर धास काटने में लग जाता है। कुछ क्षणों तक मिनकू शान्त, चिन्तित रूप में देखते रहते हैं। एकाएक भीतर से सूका दरवाजे पर आती हैं और चौखट के सहारे खड़ी हो जाती है।)

सूका : इसीलिए कचहरी से मुझे छुड़वाकर इस घर में लाये थे ?

भगौती : चुड़ैल, यहाँ क्यों आई ?

सूका : हाँ, हाँ, ले मार ! ले मार गंडासा से !! मार न !!!

(भगौती को पकड़े हुए मिनकू उसे दूर हटा ले जाते हैं और उसके हाथ का गंडासा छीन लेते हैं।)

मिनकू : एकदम पागल मत बनो भगौती ! नहीं तो सारी चौकड़ी भूल जायेगी !

सूका : नहीं, नहीं, रोको नहीं ! मारने दो इसे, चलाओ गंडासा !

३० :: अंधा कुआँ

मारो !! मरने पर तुली हूँ।

भगौती : मना कर दो सुकिया को, नहीं तो मैं जान पर खेल जाऊँगा
काका !

सूका : खेल जान पर ! खेल न !

मिनकू : जा सूका, भीतर चली जा यहाँ से !

सूका : कहाँ जाऊँ ?

भगौती : मौत के मुँह में जा ! और कहाँ जायेगी ?

सूका : मौत के मुँह में तो जा ही रही हूँ लेकिन !

भगौती : हाँ, हाँ बोल ! चुड़ैल कहाँ की !

मिनकू : नहीं मानोगे भगौती !

भगौती : मेरी नजर से इसे दूर हटा दो काका ! इसे देखते ही मेरा
खून खौल जाता है !

सूका : सुन लिया न ! बला लाओ गाँव भर को, सुन लें इसकी
बात ! सब सुन लें। इजलास से छूटकर इस घर में आये
हुए आज डेढ़ महीने बीत गये। तब से आज तक, एक
दिन भी न ऐसा हुआ होगा, जिस दिन इसने मुझे मारा
न हो। जो साड़ी पहने हुए इजलास से आयी थी, वही
आज तक मेरे तन पर सड़ रही है। वही कमीज है। देखो,
ऊपर से इसने मुझे मार-मारकर, ...

[रो पड़ती है]

भगौती : बेहया कहाँ की ! तन की खौरही, मख्मल का भगवा...।
(फिर चारा काटने लगता है। भीतर से नन्दो निकलती है। केश
में कंधी करती हुई। धूरकर सूका को देखती है।)

सूका : अब जो चाहो कह लो... लेकिन अगर मैं न होती तो
जन्म भर तेरे पुट्ठे पर हल्दी न लगती। क्या टूट-सराप
दं माँ-बाप को, अपने भाग्य को क्या रोऊँ ?

मिनकू : तो चल सूका, मैं तुझे अपने घर रखूँगा।

भगौती : यह नहीं होगा।

मिनकू : तो यह भी नहीं होगा कि तुम इसे हत्यारे की तरह अपने
घर रखो।

(हथेली में खैनी सुरक्षी मलते हुए बायीं और से हरखू मौसिया
अस्ते हैं और चुपचाप खाट पर बैठकर सुरक्षी मलते रहते हैं।

भगौती : इस हरामजादी को मैं जैसे चाहूँगा, वैसे रखूँगा, फिर
किसी से क्या मतलब।

हरखू : हाँ-हाँ तुम्हें ऐसा कहना चाहिए भगौती ? मिनकू तुम्हारे
सगे काका हैं, अलग हैं तो क्या।

मिनकू : आइ गये तीन तेरह करने। छप्पर पर रखेअपने काका
को, लेकिन हाँ, तुम्हारे हाथों मैं सूका को इस तरह नहीं
छोड़ सकता।

(सूका सिसकती हुई दरवाजे से अपना मुँह छिपा लेती है।)

भगौती : कौन होते हो सूका को ले जाने वाले ?

मिनकू : तुम लोग क्यों खड़े हो ? कोई तमासा है, चलो यहाँ से।
(नन्दो अन्दर जाती है। गाँव के लोग जाते हैं।)

भगवान के सामने का साक्षी हूँ। सूका इन्दर के साथ
चली जाती, उसे कोई नहीं रोक सकता था। हाकिम भी
यही फैसला देने के लिए तैयार था। क्योंकि इन्दर सूका
दोनों राजी थे, लेकिन मैंने ही सब कुछ किया। सूका को
फोड़ा, इन्दर को धमकाया, शूठी-शूठी सहादतें दिलवायीं।
भगवान को साक्षी देकर मैंने भरे इजलास में कहा था कि
सूका अपने शौहर भगौती के साथ राजी-खुशी से रहेगी,
इसका जिम्मा मैं लेता हूँ।

हरखू : बात में बतंगड़ देखो। वही मसल है कि...।

मिनखू : आँख ना दीदा माँगे मलीदा।

हरखू : बिल्कुल ! क्या कहा ? अरे चिकुरा इधर तो आ। क्या
कहा इन्होंने ?

(वह नहीं सुनता)

भगौती : लिया करो जिम्मा। जिसकी जैसी करनी, उसकी वैसी
भरनी। सूअर की बच्ची ने मुझे घाट-घाट का पानी
पिलवाया है।

(हरखू की हथेली से मुरक्की निकालकर खाता है। उसी बीच सूका
सहसा दरवाजे से हटकर सामने दायीं ओर बढ़ती है। भगौती
लाठी लेकर सूका पर टूट पड़ता है।)

भगौती : एक लाठी से जान ले लूँगा, जो एक पैर आगे बढ़ाया,
चल घर में ! लौट !

मिनकू : इश्वर के नाम पर उसे एक छन के लिए तो कहीं आने-
जाने दो।

भगौती : जाओ ! जाओ !! तुम्हें क्या पता ! मुझ पर क्या-क्या
बीत रही है (स्क कर) हरखू मौसिया ! सुना न ! कहते हैं

कि सुकिया को छुड़ाकर मैं लाया हूँ। बड़े छुड़ाने वाले बने हैं। सारी तबाहियों को छोड़, सुकिया को घर लाने में मेरे कुल आठ सौ छत्तीस और दो हजार रुपये खर्च हुए हैं!

(मिनकू अपने रास्ते लौट जाते हैं।)

हरखू : क्यों नहीं! बड़ी मरदई की भइया तूने!

भगौती : सच मौसिया राम कसम कहता हूँ, सुकिया को घर में आये आज डेढ़ महीने हो रहे हैं, लेकिन हराम है उसका इधर से उधर एक तिनका तक हिलाना, दोनों बक्त भैंस की तरह खा लेगी और घोड़ा बेचकर सोती रहेगी, रसी भर का काम-धाम नहीं। ऊपर से बात-बात पर लड़ना, बात-बात पर धमकी (रुक कर) और ऊपर से ये मिनकू काका हैं, जब देखो तब दुहाई देते हैं सूका—सूका सूका....!

हरखू : तुम अपना काम देखो भइया, ई है कि, ई तो दुनिया है। ई है कि सूका को तो तुम्हें निभाना है, उसे और कोई क्या जाने!

भगौती : यही तो नहीं सोचते लोग !

हरखू : घबड़ाओ नहीं, लोग धीरे-धीरे सोचेंगे। (रुक कर) क्या बात थी जो मिनकू दौड़े आये थे?

भगौती : कुछ नहीं, सुकिया की ओर से दुहाई देने आये थे। उसको नहीं जानते कि उसकी क्या करनी है। आँगन के पीछे वाले कमरे में पक्के दो मन धान का बीज रखदा था। आज रगे हाथों पकड़ा सुकिया को। पक्के दस सेर धान निकाल कर बेचने जा रही थी।

हरखू : मारा नहीं चोटी को।

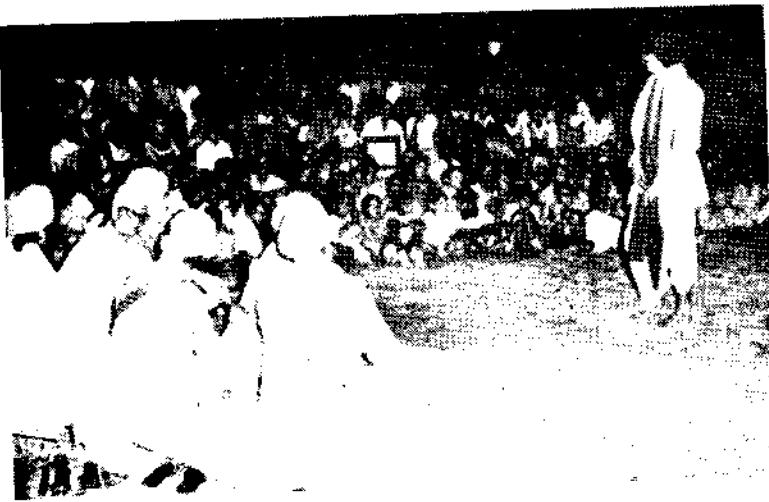
भगौती : कहाँ भर पेट मार सका, वही तो मिनकू काका गोहारी दौड़े आए थे।

हरखू : ई है कि वे नाहक ही न गौहारी दौड़ते हैं। अच्छा भगौती, छोड़ो इन बातों को, यह तो बताओ कुछ नशा पानी है, आज दो रोज हो गये, चिलम पर हाथ नहीं रखने को मिला।

भगौती : मैं किससे कहूँ मौसिया। जवानी कसम, आज तीन दिन हो गये थोड़ा सा गाँजा मेरे पास जरूर था, रामायण की



हिरनी तब कुञ्जना गिरी



एक किसा मुनाता है



केहु ना सुनी पुकार



तोहि राखो यहि बार



बिरन गोमांडि कुअँना



चलत पांव फिसलाव गे रामा



गरजू लटी के चिकनी मटिया



जैसे कलम पर दियता जरत है



जैम वर्षाहिया मा तेबे



सोता के मणियाँ सेंधुर भल सोहै

पोथो में बाँधकर रख छोड़ा था, लेकिन न जाने किसने मार दिया।

हरखू : तो चलो चइत्तर के ही यहाँ दो दम लगा आये।
(दोनों जाते हैं। अलगू आता है)

अलगू : दरवज्जा देखो, जैसे भूत प्रेत का वास होय। घास काटने बैठे थे, अपने करम को रोय रहे थे। कहीं बैइठ के गाँजा का दम लगाय रहे होंगे। भाड़ मा जाय खेती गृहस्थी। (अलगू नेसुहें की ओर बढ़कर कटे हुए चारे को हाथ से उलटता-पुलटता है, उसी बीच एक हाथ में कटीरा और एक हाथ में पानी का गिलास लिए राजी आती है।)

राजी : लो, मुँह मीठा कर लो।

अलगू : क्यों क्या बात है?

राजी : भूल गये, खेत में धान की मूठ' जो लेकर आये हो।
(देती हुई) लो गुड़-दही है।

(गुड़-दही साकर, पूरे गिलास का पानी पी लेता है।)

राजी : (उसी बीच) दुनिया में बहुत गाँव होंगे, बहुत आदमी होंगे, पर सब इस गाँव-घर के नीचे होंगे।

अलगू : (बर्तन राजी को देते हुए) बाहर से दरवाजा क्यों बन्द था?

राजी : जिससे सूका दीदी कहीं बाहर न निकले। आज फिर बहुत मारा है।

अलगू : घर में बैठ-बैठकर यहीं तो करते हैं। कोई और काम-धाम तो है नहीं।

राजी : नन्दो ने आज फिर आग लगाई है। खुद तो अनाज बेच-बेचकर पैसे गाँठती है और झूठ-मूठ आज सूका दीदी को धर पकड़वाया। खुद कपड़े में धान वाँधकर खिड़की के रास्ते निकाल रही थी, लेकिन निकाल न सकी, फिर उल्टे अपने पेट का पाप सूका दीदी के सिर मढ़ दिया।

अलगू : फिर।

राजी : फिर क्या! उन्होंने बेकसूर दीदी को मारा (रुक कर) और इस समय भी नन्दो भीतर दीदी से लड़ रही है।

अलगू : क्यों?

राजी : एक गाँठ हल्दी और प्याज के लिए।... कहती है कि घर

१. मूठ—पहली बोवाई

में इतनी हल्दी और प्याज कहाँ है कि रोज-रोज बदन
भर में मालिश की जाय।

अलगू : मारती क्यों नहीं उसे। भौजी डरती क्यों है? रोज-
रोज उस पर इतनी मार पड़ती है और चोट पर दवा
के लिए एक गाँठ हल्दी का मुँह देखना पड़ता है। देखता
हूँ अभी।

(आंवेश में भीतर चला जाता है। राजी दरवाजे पर ही खड़ी रह
जाती है। भीतर नन्दो अलगू में झड़प। सहसा बायीं और ले
खांसते हुए हरखू आते हैं। राजी उन्हें देखते ही अपने माथे का
आँचल नीचे खीच लेती है और खिसक कर किवाड़ की ओट में
चली जाती है। कुछ ही क्षण बाद भीतर से अलगू क्षुंझलाहट
में यह नहता हुआ बाहर निकलता है।)

अलगू : घर क्या है भूतों का डेरा बना रखा है।

हरखू : क्या बात है अलगू भइया?

अलगू : यह जो नन्दो है यह भी आसमान पर चढ़ो रहती है। मुँह
की लगी डोमड़ी गाँव ताल-बेताल। जब से सूका भौजों
को घर ले आये हैं, कोई न कोई वहाना ढूँढ़कर भारते हैं,
ऊपर से यह नन्दो है, वह भगौती बाबू का दायाँ हाथ बनी
है। चोट पर रखने के लिए भौजी से एक गाँठ हल्दी के
लिए लड़ रही थी। मुना होगा कहीं ऐसा?

हरखू : राम...राम...इ है कि, ठीक नहीं।

अलगू : ठीक तो नहीं है, इसे तो सभी कहते हैं, लेकिन कभी किसी
ने बावू को मना भी किया है, डांटा-फटकारा भी है?...
तुम भी तो मौसिया जव देखो तब उन्हें गाँजा पिलाते
फिरते हो, कभी उन्हें डाँटा है?

हरखू : मैं तो हरदम समझाता हूँ कि सूका को अब तिनके से भी
न मारो। उसे सुख दो, दुलार दो...लेकिन ई है कि
मानता ही नहीं!...क्या करूँ मैं।

राजी : (किवाड़ के पास से ही) समझाते नहीं आग हो...धर में लगे
आग, गाँव खेलें फाग।

अलगू : देखो न दरवाजे की हालत देखो। आज चार दिन हुए
दरवाजे पर झाड़ तक नहीं दिया गया। (दिखाता हुआ)
दिन भर में यही इतना धास लेकर आये हैं, वह भी पूरा
काटा नहीं गया, नेसुहे पर पड़ा है। और घर में आग

लगाकर न जाने कहाँ दरवाजे से खिसक गये हैं।

हरखू : शायद कहीं खेत में पानी देखने गये हैं।

अलगू : वाह! खेत में पानी देखने गये हैं! इनहीं कहते कि कहीं
गाँजा पीने गये होंगे। आज खेत ही देखते होते तो रोना
क्या!

(इसी बीच अधारे हलवाहा आता है, मिट्टी और कीचड़ में सना
हुआ, बरामदे में नेसुह की ओर बढ़कर दीवार की खुली हुई
आलमारी में से बरारी और एक रस्सी निकालता है।)

अलगू : क्या बात है अधारे!...खेत निपट चुका न?

अधारे : हाँ ऊ तो निपट चुका बाबू। कोन-किनारा सब ठीक है।
अलगू : अब क्या करने जा रहे हों?

अधारे : देख आयन है बाबू, डंडवावाले खेत में कुछ पानी है, कुछ
पानी भगवानदीन बाबू के परती में से कटाय लिहेन हैं,
अब तो अपने खेत में यतना पानी है बैगवाय कि वह मा
जोत-हेंगाय के अमिला' मार दिहा जाय।

अलगू : हाँ, हाँ, बिलकुल ठीक। और कल सुबह ही उसे बोइ
लिया जायगा। उसमें धास भी तो बहुत लगी थी।

अधारे : अब तो सब ठीक वहै जाई बाबू।

अलगू : का ढूँढ़ रहे हो?

अधारे : बरारी।

अलगू : अच्छा रुको, नयी बरारी देता हूँ। लो, इसे ले जाओ।
(अधारे लेकर जाने लगता है।)

अलगू : चलो तब तक खेत जोतो, हेंगाने के लिए मैं खुद आता
हूँ!...देखो न, बैलों को खिलाने के लिए थोड़ा-सा हरेरा'
तक नहीं तैयार हुआ। नेसुह अपनी जगह रो रहा है, मैं
अपनी जगह रो रहा हूँ।

हरखू : ई है कि आज तो बैलों की सानी में कुछ हरेरा जरूर
होना चाहिए, अपाड़ की पहली बोआई, पहले पानी का
लेवा है, बैलों का कलेजा काँप जाता है।

अलगू : जाओ अधारे! जरा खूब दबाकर जोतना, और कहीं

१. धास लगे खेत की जोतकर, हेंगा से उसे समतल करके उसे उसी हालत में छोड़ देना
ताकि मिट्टी खट्टी (ग्रमला) हो जाय।

२. हरी धास, चारा।

३६ :: अंधा कुआँ

आंतर न पड़ने पाये, वड़ी दूब लगी है खेत में।
(अधारे चला जाता है।)

अलगूः हाँ। अच्छा तमाशा है हमारी गृहस्थी का! मर-मर करै बैलवे बैठे खांय तुरंग।

(नेमुहे पर बैठता है और तेजी से चारा काटने लगता है।)

अलगूः (एक क्षण रुक कर) तुम्हारे यहाँ कितने बीघे खेत बोये गये मौसिया, कुछ पता है कि नहीं?

हरखूः कुछ जरूर बोये गये हैं, ई है कि...

(उसी समय दरवाजे पर सूका दिखायी पड़ जाती है, दायें हाथ से वह अपनी बायीं बाँह पकड़े हैं, पूरे हाथ में हल्दी पुती है। वह एक क्षण पूरे दरवाजे को देखती है, अलगू़ चारा काटने में व्यस्त है। सूका की दृष्टि फिर हरखू पर जमती है।)

सूका : मेरा पहरा देने के लिए दरवाजे पर बैठाये गए हो?

हरखूः ऐं क्या कहा! फिर से तो कहना अगर हिम्मत हो। (सूका दुहराती है।) ऐं इतनी हिम्मत! ई है कि अलगू़ मना कर दो सूका को, मैं तुम्हारे दरवाजे पर ताना-बोली सुनने के लिए नहीं आता। ई है कि मैं किसी का दिया-लिया नहीं खाता, हाँ।

(अलगू़ चुपचाप चारा काटता रहता है, क्षण भर बाद हरखू उठते हैं और अपने रारते चल देते हैं। सूका उदास दरवाजे से लगी खड़ी रहती है। कुछ ही क्षणों में अलगू़ चारा काट चुकता है, चारा बटोर कर उठता है, गडासे को अलमारी में रखता है।)

अलगू़ : (सूका को देखकर) जरा राजी को बुलाना भौजी।

(सूका भीतर चली जाती है, उस बीच, अलगू़ बरामदे के दूसरे भाग में जाकर अनाज से भरे हुए दोनों बोरों को क्रमशः उठाते हैं और अन्दाज लेकर वहीं रख देता है। इसी बीच बरामदे में राजी आती है।)

अलगू़ : ये बोरे बाहर बरामदे में कब तक रखें रहेंगे?

राजी : पता नहीं, उन्होंने यहीं रखवाया है, कहते हैं कि घर से धीरे-धीरे बिक जायगा।

अलगू़ : कैसे?

राजी : कहते हैं कि सूका दीदी बैंच लेंगी।

अलगू़ : अजीब तमाशा है! दरवज्जा सूना पाइके अगर कोई यह-

से दोनों बोरे मार दे तो?

(राजी चप रहती है। उसी बीच, दीड़ा हुआ अधारे आता है, राजी दरवाजे पर चली जाती है।)

अलगू़ : क्या है अधारे?

अधारे : हाय राम! विन्ध्ये छ्वेद दिहिस!

अलगू़ : कहाँ?

अधारे : कानी उँगरिया में।

(अलगू़ विचलू का मंत्र मारता है।)

अलगू़ : खेत जा रहा हूँ।

राजी : बनियाइन तो पहन लो।

अलगू़ : (जाता हुआ) वया होगी बनियाइन!... बस, ऐसे ही ठीक है। दरवाजा सूना मत छोड़ना, हाँ!

(तेजी से चला जाता है, राजी दरवाजे पर अकेली खड़ी रह जाती है। भीतर से दरवाजे पर आती हुई नन्दो।)

नन्दो : किसका मन नहीं चाहता। हूँ, दरवाजे पर खड़ी-खड़ी नजारा मारेगी और...

(क्षण भर के लिए चौखट पर रुक जाती है, और आवेश में दायीं ओर मुड़ती है।)

राजी : और वया, वह भी कहती जाओ न! तुम्हें किसका डर है?

नन्दो : (रुक कर) हाँ हाँ कहूँगी, लाख बार कहूँगी, पीठ पीछे चुगली तुम्हें खूब आती है ना! लेकिन कर क्या लिया?

राजी : भला तुम्हारा कोई क्या कर लेगा!

नन्दो : नहीं नहीं खूब जी-भर कर चुगली कर लो, जिससे तुम्हारी छाती ठण्डी हो जाय!

राजी : (बीच ही में) पानी में आग लगाना तुम्हें ही आता है, सब तुम्हें ही मुबारक रहे।

नन्दो : और तुम्हें?

राजी : मुझे क्या! मेरा जो होना था हो गया, लेकिन तुम्हें उस दिन पता लगेगा, जब अपने घर जाओगी।

(एकाएक चप होकर भीतर मुड़ जाती है, उसी समय भगौती दिखायी पड़ता है, उसके साथ तेजई और मुरत भी हैं। देखते ही नन्दो रो पड़ती है।)

भगौती : क्या है रे? क्या बात हुई? अरे बोलती क्यों नहीं?

नन्दो : घर का घर मेरा दुश्मन है !

भगौती : अरे कुछ बात तो बता !

नन्दो : राजी झूठे-झूठे अलगू से चुगली करती है। सूका मुझसे अलग लड़ती है। दिन भर मरन्मर के अकेली काम करूँ, और वे दोनों एक मुँह होके बैठी-बैठी मुझसे लड़ती हैं। (तेजई और मूरत खाट पर बैठ जाते हैं।)

नन्दो : सूका को जब देखो दिन-भर सोने से छुट्टी नहीं मिलती, राजी को जब देखो तब दरवाजे पर खड़ी नजारा मारती है...।

भगौती : घबड़ाओ नहीं, एक-एक को ठीक कर दूँगा, सबकी नस-नस पहचानता हूँ बुड़ा हो जायगा लेकिन मेरे अलगुआ को अकल नहीं आयेगी।

तेजई : (समर्थन में) विल्कुल ठीक है !

मूरत : उल्लू कहीं का, वह भी सुकिया के लिए बड़ी हमदर्दी रखता है।

तेजई : पता नहीं क्यों ?

मूरत : कुछ मरद जनम से ही मेहरे होते हैं (नाटक करता हुआ) औरत का नाम लेते ही अहा...हा...हा...लक्ष्मी है, गऊ है, उस पर हाथ नहीं !

तेजई : वस लत्तन लगाकर उन्हें दोनों वक्त पूजो...हूँ...पूजो नहीं सूजो... (रुक कर) औरत ! औरत की जात, इनका तो मुँह तोड़कर रख दे...सारा जहर तो इनकी आँख और जबान में है।

भगौती : नन्दो !...जरा हुक्का बोझ कर दे जाना ! (नन्दो भीतर जाती है।)

मूरत : अलगू कहता है कि सूका को मारो नहीं, नहीं तो वह फिर भाग जायगी।

(हँसता है।)

भगौती : अरे बकने भी दो उसे। सुकिया को तो मैं इस लायक ही न रखूँगा कि वह कहीं भाग सके।

मूरत : विल्कुल सही, मैं भी यही सोचता हूँ, न रहे बांस न बजे बाँसुरी।

तेजई : भगौती बाबू, मैं तो यही सोचता हूँ, कि पहले इन्द्रवा

से बदला लिया जाय, आजकल खूब धूलाकर बजार में धूमता है।

मूरत : इन्द्रवा को तुमने बजार में ही देखा है ! तब क्या देखा, अरे मैंने तो कई बार ताड़ी के ठीके पर देखा है।

तेजई : धूत तेरे की ! बाभन और ताड़ी ! राम...राम...राम...राम...।

भगौती : अरे, उस बहै की क्या चलाते हो ?

(नन्दो हुक्के पर भरी निलम लिये आती है, भगौती को देकर भीतर लौट जाती है।)

भगौती : (फूँक मारता हुआ) तो इन्द्रवा आजकल घर पर ही रहता है। तेजई भाई ! एक बार तो उससे दिल का अरमान पूरा ही करना है।

(तेजई को हुक्का देता है)

भगौती : हनुमान जी वह दिन न जाने कब पूरा करेंगे।

मूरत : उसमें क्या रखता है भगौती ! उससे तो बदला लेना दाँ-दाँ-बाँहाथ का खेल है। पहले तो घर फूँको उसका !

तेजई : नहीं नहीं, पहले घर नहीं, पहले उसके दरवाजे पर जो बैल बँधे हैं, दखिनहा बैल की जोड़ी, उन्हें खूंटा से ही मार दो ! फिर उन्हें ढूँढ़ने के लिए जब वह इधर-उधर भटकेगा, फिर क्या ! कहीं ऊँचे-नीचे चार डण्डे भी बजा दो।

भगौती : चार हो डण्डे नहीं, बिना हाथ-पैर तोड़े दम कहाँ !

तेजई : हाँ, इधर भी विल्कुल गफलत नहीं, यही सोचो कि एक दुश्मन तो घर ही मैं भौजूद है (रुक कर) सुकिया के हाथ से दाना-पानी तो नहीं लेते भगौती ?

भगौती : अरे राम कहो भइया ! आज तक उसको चौके में पैर नहीं रखने दिया। जो वह गयी उसके हाथ का छुआ दाना-पानी लंगा ? राम...राम...मैंने अपने बर्तन तक उससे नहीं छुलाये ! एक पीतर की थाली, एक कांसे का लोटा। थाली में ऊपर से खाना डाल दिया जाता है, और लोटे में ऊपर से पानी—बस !

तेजई : बहुत ठीक।

मूरत : भगौती की सारी कुटाई-पिसाई का काम उससे लो, और तिल-भर इधर-उधर करे, तो देह जूता—देह डण्डा !

० :: अंधा कुआँ

भगौती : कौन ?

(बिना कुछ बोले सूका दरवाजे पर बढ़ जाती है, उसके अंचल और दोनों हाथों में हल्के के दाग स्पष्ट हैं, वह एक घायल दृष्टि से हीनों को देखती है, पर कुछ बोलती नहीं।)

भगौती : (क्रोध से) तुझे तिल-भर लाज-शरम नहीं, देखा न, कोई भी दरवाजे पर बैठा हो, यह बेशरम इसी तरह दरवाजे पर आ टपकती है। जा अन्दर। चल भीतर।

(सूका अन्दर जाती है। तेजई-मूरत दूर जाकर बैठते हैं।)

भगौती : राम राम साहुजी, और सब कुशल-मंगल है न...आवो बैठो...बैठो न !

[रामदीन आते हैं।]

रामदीन : सब ठीक है, कहो, घर में सब राजी-खुशी है न ?

भगौती : घर की हालत तो बहुत खराब है साहुजी, नहीं तो अब तक खुद तुमसे मिलता ।

रामदीन : अरे खुद कौन मिलता है ! ये सब तो कहने की बातें हैं, अब तो वह जमाना ही न रहा, एक हाथ से लेना, दूसरे से देना, न कुत्ता भूकता था, न पहरू जागते थे ।

भगौती : राम कसम साहुजी ! बस एक मोहलत और दे दो, फिर न देना ।

रामदीन : मैं अब एक घन्टे के लिए नहीं मान सकता । आज मैं ले के जाऊँगा । पचास रुपये तो पिछले हुए, उसके आज दो साल हुए, अगर उसके सूद लगाता तो अब तक वह राई से पहाड़ हो गया होता ।

भगौती : यह तो तुम्हारी मुझ पर दया है साहुजी !
(तेजई-मूरत की हँसी ।)

रामदीन : लेव बीड़ी पानी पीयो ।

मूरत : खुश रहो ।

रामदीन : पचास पिछला, और पूरे ढाई सौ बाद का ! ई सब कहाँ जायगा ? मुझे उल्लू बनाते हो । हमारा तुम्हारा बादा तो यह था कि सूका के मुकदमे से फुरसत पाते ही सारा रुपया अदा कर दोगे । कहाँ हैं आज वह बादा ? यही मर्द बनते हो ?

भगौती : यह सब समय कहलवाता है साहुजी ! नहीं तो मैं सहने वाला आदमी नहीं था ।

रामदीन : आज कुछ ले के ही जाऊँगा । बोरे में क्या है ?

भगौती : धान हैं साहु ! बीज के धान हैं, कुल यही दो बोरे हैं और पक्के सोलह बीघे धान बोने हैं ।

रामदीन : कितने-कितने के बोरे हैं ?

भगौती : दो-दो मन के ।

रामदीन : तो बस, यही चार मन धान बीज के हैं तुम्हारे पास, और तुम्हें पक्के सोलह बीघे बोने हैं (रुक कर) क्या झूठ बोलते हो ।

भगौती : विश्वास मानो साहु ! और तो इस साल विसार लेना है ।

रामदीन : मुझे इससे कुछ मतलब नहीं, चाहे तुम विसार लो, चाहे विसार दो, मुझसे कोई मतलब नहीं । ओ चिकुरा ! इधर आ । आ ना । अरे बीड़ी पिला दूँगा । अच्छा दस पैसे ।

अच्छा बीस पैसे । क्या ? अच्छा चल इक्कीस पैसे । शाबाश । चल उठा बोरा ।

(चिकुरा आगे बढ़ता है, भगौती रामदीन से हाथ जोड़ता है, लेकिन रामदीन नहीं मानता, वह तेजी से एक बोरे को चिकुरे के सिर पर उठा देता है । वह चल देता है, पीछे-पीछे रामदीन जाता है । भगौती उदास दृष्टि से देखता रह जाता है, दूसरी ओर से हरखू आते हैं ।)

हरखू : अरे क्या देख रहे हो । ई दुनिया आनी-जानी है । हाँ, सुनो, बहरैची अवकी पक्के सेर भर बुटवालिया गाँजा ले के आया है । क्या कल्लीदार गाँजा है भगौती, देखते ही तवियत नशीली हो जाती है ।

भगौती : ऐ तेजई-मूरत ! चलो बाजार पहुँचो, आता हूँ ।

(दोनों जाते नहीं छिप जाते हैं ।)

हरखू : हाँ, भाई (अंगोल्के के कोते की गाँठ खोलते हुए) यह देखो न नमूना, गाँजा है कि चरस की पुड़िया हाय ! हाय !!

भगौती : (सूचता हुआ) चीज तो बहुत उम्दा है मीसिया !

हरखू : और मैंने बहुत ही सस्ते में उसे फाँस लिया है, पूछो कैसे ? बत ई है कि बहरैचिया को जोन्हरी के बीज की ज़रूरत है और तुम्हारे घर का बीज गाँव भर में मशहूर है ।

भगौती : कौन है रे, नन्दो क्या है ?

नन्दो : गोबर लेने जा रही हूँ ।

१. बीज, कर्ज के रूप में लेने की प्रणाली, सेर का सवा सेर ।

२ :: अंधा कुआँ

भगौती : (पास ही रखे हुक्के से चिलम निकाल कर देते हुए) पहले यह चिलम भर ला ।

(नन्दो वायस लौट जाती है, भगौती ते से हरखू कीजी और मुड़ता है और आँखों से संकेत करता हुआ ऊपर दीवार की खूंटी से टॅंगे जोन्हरी के झोप्पे को उतारता है और हरखू के अंगोच्छे में बाँध देता है। हरखू को देता है, हरखू झोप्पे को लिये तेजी से बाँधी है। भगौती की ध्यान भर तो घबराया और मुड़कर बाहर चले जाते हैं। भगौती क्षण भर तो घबराया हुआ उसी ओर देखता खड़ा रहता है, किर मुड़ता है, दूसरे ताब में बैंधे रखे हुए बस्ते को उठाता है, पलंग पर बैठ जाता है, बस्ते को खोलकर उसमें से आल्हा की पोथी खोलता है और उसे पढ़ता हुआ झूमने लगता है। तेजई मूरत नकल करते हैं। चिलम लिये नन्दो आती है, हुक्के पर चिलम रखकर भगौती की देती है।

भगौती बिना कुछ बोले हुक्का गुड़गुड़ाने लगता है, नन्दो जल्दी से आल्हा की पोथी को फिर बाँधकर ताब में रख देती है।)

नन्दो : जोन्हरी का झोप्पा कहाँ चला गया ?

भगौती : बहरैची के घर गया, खबरदार कहीं जो जबान हिली !

जोखन : (प्रवेश करते ही) जै रामजी की भगौती बाबू ।

भगौती : राम-राम साहु ! आवो बैठो !

.....

भगौती : वाल-बच्चे सब अच्छे से हैं न साहु !

जोखन : सब पंचन की दुआ है भइया । (तेजई-मूरत हँसते हैं) भगौती

बाबू आज मेरा भी हिसाब साफ कर दो !

[जोखन बीड़ी का बंडल उनकी ओर फेंकता है।]

भगौती : अभी तो हाथ-बहुत तंग है साहु !

जोखन : लेकिन रामदीन साहु तो आज एक बोरा धान ले गये हैं, मेरे भी तो रुपये सोलह ही आने के हैं, कम तो नहीं न ?

भगौती : क्या बताऊँ ! (बोरे की ओर संकेत करके) यही दो बोरे धान बीज के लिए अपने पास थे । रामदीन साहु माने नहीं, इसमें से एक बोरा धान उठवा ले गये । वैसे मैं अपना गाँव छोड़कर कहीं भागा नहीं जा रहा हूँ ।

जोखन : नहीं, नहीं, इसमें भागने की क्या बात है । मेरे भी तो कुल ढाई सौ से ऊपर ही है । हाँ, यह बात जरूर है कि मैं रामदीन

साहु की तरह बसूलना नहीं जानता, गरीब आदमी हूँ ।

भगौती : ऐसी बात नहीं जोखन साहु !

जोखन : यही बात है, मैं रत्ती-रत्ती जानता हूँ, खैर मैं तो ईश्वर को ही सौंपता हूँ ।

(जाने लगते हैं ।)

भगौती : रुठकर मत जाओ साहु ! फिर मेरा काम कैसे होगा । अभी तो मुझे इन्द्रवा से पूरा बदला लेना चाही है ।

जोखन : अब मुझसे कुछ नहीं होगा, साफ बात !

भगौती : अच्छा खाली हाथ तो न जाओ । इतना आलू है, इसे ही बाँधे जाओ ।

(जोखन अपने चादरे में सब आलू उलट लेते हैं, उसी समय चिराग लिए राजी आती है ।)

भगौती : अभी दिन ढबा नहीं कि चिराग जल गया । क्या जरूरत थी इसी समय चिराग की । सब घर फूँकने पर लगे हैं ।

(अधारे के साथ अलग आता है ।)

अलग : ये घर रखाय रहे हैं ।

भगौती : कौन-सा रन मार के आ रहे हो जो बड़े ताब में हो ?

अलग : रन तो घर में बैठ-बैठे तुम्हीं मारते हो, मैं क्या मारूँगा ।

भगौती : एक ही दिन में चेंचा फूल गया । अभी तो सारी बोआई पड़ी है, तब तो नानो ही मर जायेगा !

अलग : लेकिन तुमसे क्या, घर में बैठे-बैठे भौजी को हलाल करो ! और चापलूसों के साथ गाँजा पियो, यही तो तुम्हारा धंधा रह गया है ।

भगौती : मुझ से ज्यादा टिरेनवीसी मत करो अलग, हाँ ।

अलग : सारे दिन में एक खाँची धास लेकर आये । यह भी आधा उसी तरह नेसुहे पर पड़ा हुआ था । दिन भर खेत में मरो और साँझ को नेसुहे पर भी जूझो ।

भगौती : तो क्या हो गया इसमें ?

अलग : हो क्या गया !

(उसी समय दरवाजे पर राजी आती है ।)

राजी : क्या सिर धन रहे हो ! चलो हाथ-पैर धोओ !

अलग : ऐसे गहर्थी नहीं चलती ! पूरा गाँव माधो-माधो करके खेत बो रहा है आज हम पूरे तौर से एक भी बीचा धान न बो सके आखिर क्यों ?

भगौती : (विगड़कर) होगा, मेरी खोपड़ी मत चाटो ।

अलग : मरद तो बनते हो, बीज के धान कैसे उठवा ले गया ?

अंधा कुआँ

भगौती : जिसका बाकी है, उसका क्या किया जाय ।

अलग : किस बीज से खेत भाटे जायेंगे ?

भगौती : यह सब उसी बजह से हुआ न, वह बेशरम न भागती ना मुकदमा चलता ! फिर यह नौबत क्यों आती ! क्यों मुझ पर लाल-पीले होते !

(एकाएक भीतर से सूका आती है ।)

सूका : सब दोष मेरा ही तो है । बीज का धान विका उसका भी, जोखन को आलू दे डाला उसका भी, जोन्हरी का पूरा झोप्पा बैंचकर ॥

(एकाएक भगौती कीध से सूका पर टूट पड़ता है, सूका दरवाजे पर गिर पड़ती है । अलग भगौती में कुश्ती होने लगती है । राजी घबड़ाई हुई दरवाजे पर आती है, उसी समय बायीं ओर से, हाँ, हाँ, हाँ, की गुहार करते हुए मिनकू काका आते हैं, आते ही वह अलग और भगौती को अलग-अलग कर देते हैं और दोनों के बीच में छड़े हो जाते हैं ।)

राजी : कान खोलकर सुन लो जान दे दुंगी, अगर कोई मेरे मरद पर हाथ उठायेगा । सारा दिन बैल की तरह काम करें ऊपर से इनकी गारी भार ।

अलग : घर फूँक कर तमाशा देख रहा है ।

भगौती : (गुस्से से सबको देखता हुआ चुप है ।)
अलग : काम न धाम । दिन भर भौजी को मारना, गाँजा पीना, और यहीं बैठे-बैठे घर फूँकना ।

मिनकू : कौन समझाये, आगा-पीछा तो कुछ सोचते ही नहीं ।

भगौती : (ओध से डगट कर) बड़े आये सोचने वाले ! सूका से मेरी शादी तुम्हीं ने कराई थी, सारा काँटा तुम्हीं ने बोया था ।

मिनकू : बड़ा कसूर किया था बेटा ! उतने दिन बैठे तो थे, कहीं हो रही थी शादी ।

अलग : मेरा घर है । मैं इस घर का मालिक हूँ, तुमसे मतलब ! मैं चाहे जो हूँ ।

भगौती : तो अलग ही जा मेरे घर से ।

सूका : (सिसकती हुई) मुझे अकेली न छोड़ना इस घर में । मुझे यह भार डालेगा ।

राजी : घबड़ाओ नहीं दीदी, हम तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकते । तुम्हीं तो मलकिन हो इस घर की !
(प्रकाश बुझ कर फिर दायीं ओर उभरता है । संगीत उठता है ।)

दूसरा अंक

धैइ देत्यो राम हमारे मन धिरजा ।

सबके महलिया दियना बरतु है

हरि लेत्यो हमरो अंधेर

हमारे मन धिरजा ।

सबके महलिया जेवना बनतु है

हरि लेत्यो हमरो भूख

हमारे मन धिरजा ।

सबके महलिया सेजिया लगतु है

हरि लेत्यो हमरो नींद

हमारे मन धिरजा ।

धैइ देत्यो राम हमारे मन धिरजा ॥

हारने से पहले ही क्यों हार जाऊँ ।

सूका ने सोचा, फिर क्यों न भाग जाऊँ ।

मगर इस बार वह किसी के संग न गयी

भागकर वह एक कुएं में कूद गयी ।

मगर वहाँ भी किस्मत देखिए

कुआँ अंधा था

कुआँ अंधा था

कुआँ अंधा था

कुआँ अंधा था ।

(संगीत)

केहुना सुनी पुकार

हिरनी तब कुँअना गिरी

तुहि राखो यहि बार

विरन गोसाई कुँअँना

(मंच पर प्रकाश उभरता है । लोग सूका को पकड़कर ले आते

६ :: अंधा कुआँ

है। पृष्ठपूर्व में वही संगीत)

हरख़ : इसकी हिम्मत तो देखो।

तेजई : सबको हथकड़ी डलवाने चली थी।

मूरत : गाँव की नाक काट डाली।

हरख़ : बेसरम कहीं की!

राजी : दीदी ! हे भगवान। चले जाव हमारे दरवजे से। का घूर रहे हो। कोई तमाशा है का। तुम पंचन के घर बहू-वेटी नाहीं। इन्हें रोको। पागल न होइ जाय।

(अलगू़ रस्सी पकड़ता है।)

अलगू़ : अभी पेट नहीं भरा जो इसे पावे में बाँधने जा रहे हो।

भगौती : यही रात-दिन मनाते थे कि यह कहीं कुएँ में कूद मरे या कहीं भाग जाय।

तेजई : देख लेना, यह आज ही रात को हाथ से निकल जायेगी।
(भगौती रस्सी के फन्दे से सूका को बाँधने चलता है।)

अलगू़ : (रस्सी छीनता हुआ) यह नहीं होगा।

भगौती : यह होके रहेगा।

अलगू़ : घर फूँकवाकर दुनिया को तमाशा नहीं देखने दूँगा। तुम लोग यहाँ वयों खड़े हो?

भगौती : मैंने बुलाया है, कौन हो तुम ऐसा कहने वाले?

भगौती : अगर गाँव के ये लोग आज मेरा साथ न देते तो यह हाथ से निकल चुकी थी।

तेजई : तुम भी तो ढूँढ़ने गये थे। मिली कहीं?

अलगू़ : ढूँढ़कर तुम्हीं लोगों ने बहुत जग जीत लिया (रुक कर) इसीलिए ढूँढ़ा था कि...

राजी : दीदी गऊ़ है। जो गऊ़ मारेगा, कोड़ी होगा कोड़ी। हाय ! किसी की हिम्मत नहीं जो इसे रोके ! कहाँ गये गाँव के देवतन ! मरद बनते हैं। थुड़ी है थुड़ी। जाओ हाथ में चूड़ी पहन लो, वाह रे, मरद बनते हो।
(सूका को भगौती बाँध देता है।)

भगौती : अब आवो अगर हिम्मत हो।

अलगू़ : खून पर तुले हो ?

भगौती : मुझे कुछ परवाह नहीं।

अलगू़ : सात पुस्त के बने घर को नाश करके छोड़ोगे। यह कोई बात है।

भगौती : इसका इस तरह कुएँ में कूदना तुम्हारे लिए बात है, होगी बात तुम्हारे लिए। मेरे लिए जान की बाजी है, इसकी यह मजाल !

अलगू़ : लेकिन इसे कुएँ में कुदाने वाले तुम हो !

भगौती : खबरदार रस्सी पर अगर किसी ने हाथ लगाया ! सब कान खोलकर सून लो। मैं अपने बाप के असली खून का नहीं अगर मैं सुक्रिया का मूँड़ काटकर तुम एक-एक को न फँसा दूँ। आवो चलो। खबरदार, अगर किसी ने, इसे दाना-पानी दिया। इसी तरह इसे सुखाकर मार न दिया तो भगौती मेरा नाम नहीं। चलो।

(तेजई-मूरत को साथ लिए भगौती चला जाता है। लोग धीरे-धीरे जाना शुरू करते हैं।)

सूका : अब तो मैं थक चुकी हूँ। अब यहाँ क्यों खड़े हो ? बड़े मिनक काका बनकर आये थे।

मिनक : तुम भी तो कम नहीं हो। क्यों डूबने गयी थीं, और पकड़कर जब यहाँ आयी तो ऊपर से यह धमकी कि फिर कुएँ में कूदूंगी, इस पर तुम बाँधी न जावोगी तो क्या होगा !

अलगू़ : लेकिन इसमें इसका रत्ती भर कसूर नहीं है।

सूका : नहीं नहीं, सब मेरा है। इससे मेरी शादी हुई यह मेरा कसूर है, मैं भागी, पकड़ी गई। मुकद्दमा चला, उसे छोड़कर फिर इस घर में आई, यह भी मेरा ही दोष है। मैं भरने भी गयी तो मुझे अंदा कुआँ ही मिला, क्या-क्या कहूँ—किससे कहूँ।

[रो पड़ती है।]

नन्दो : मीठा-मीठा पाप्प, कड़वा-कड़वा थू !

राजी : कड़वा-कड़वा वया ! अब तो गज भर छाती हुई तेरी !

नन्दो : मेरो क्यों, तुम्हारी होती, लेकिन चली तो नहीं।

राजी : अच्छा तुम्हारी तो चली।

नन्दो : खाल खिच जाती !

राजी : किसके मुँह में हैं बत्तीस दाँत जो मेरी खाल खीचेगा ! जबान सम्भालकर निकालो नहीं तो।

नन्दो : नहीं तो क्या कर लेगी ?

राजी : देखती हूँ कब तक उनके सिर पर चढ़ी रहती है !

नन्दो : आँख फोड़ लो न।

४८ :: अंधा कुआँ

हूसरी औरत : बहुत ननद देखा लेकिन सब इसके नोचे (फक कर) घर-
दुवार भौजी के, ननदी के लबलब।

पहली औरत : देखो कब सूका दीदी को छोड़ते हैं।

राजी : दीदी के भाग भी तो जलने लायक हैं। इस घर से दहिजरा
कहीं बूझने-धंसने भी गयी, तो इन्हें और कोई कुआँ न
मिला, भगवान की आँख फूटी है।

हूसरी औरत : आदमी भी तो नहीं डरता।

(घर के पिछारे झूला झूलती हुई लड़कियाँ।)

गगरी पै कगवा, अरे बोलन लागे।

छोटे ने बुलवा, के पातर डरिया

तापे सुगनवां, अरे डोलन लागे।

पोखरा में हंस दोल, तलरी में कुरिला

बिरहा की रतिया, अरे सालन लागे।

खुलि जाय अंचरा, मसकि जाय अंभिया

वाजू पै वन्दा, अरे घूमन लागे।

उड़ि जा तू कागा, सैयां के देसवां

कजरी के बनवां, अरे फूलन लागे।

[आधी रात अकेली सूका बैधी खड़ी है। छिपता हुआ इन्दर
आता है।]

सूका : कौन ?

इन्दर : शी...इन्दर !

सूका : खबरदार !

(इन्दर सूका को धंधन-मुक्त करता है।)

इन्दर : चलो, भाग चलो।

सूका : इस द्वार भगाकर कहाँ ले जायेगा ?

इन्दर : बहुत दूर।

सूका : (सोचती है।) यह कौन आया है ? यह कौन है ? इसके साथ
फिर भागूँ ? हाँ, फिर भाग सकती हूँ। फिर...फिर वही।
नहीं, अब मैं नहीं भागँगी ! तू मुझे नहीं बचा सकता। जा,
चला जा मेरी आँखों के सामने से—मुझे फिर से बाँधकर
चला जा।

इन्दर : मुझे सब मालूम है, कि तब से भगौती तुम्हें कितनी यात-
नाएँ देता है।

सूका : कभी तेरे सामने रोने नहीं गयी। वह मेष पति है, मुझे

मारता है, तुझसे क्या ! तू कौन होता है कहने वाला !

इन्दर : मुझे माफ कर दे सूका।

सूका : सूका का नाम न ले, सूका गयी मर। अपना भला चाहे तो
मुझे फिर इसी पावे में बाँध दे। बाँध जैसे मैं थी।

(इन्दर भयभीत खड़ा है।)

सूका : तुझे गौ की सौगन्ध अगर तू मुझे उसी तरह नहीं बाँध
देता।

इन्दर : ईश्वर जानता है...

सूका : बातें मत बना, ईश्वर-फीश्वर कुछ नहीं, मेरा मुँह क्या
उतने दिनों तक कलकत्ते में नहीं देखा था। पुलिस मुझे
गिरपतार कर रही थी और तू दूर गली में खड़ा-खड़ा मेरा
मुँह तक रहा था, तब मुझे देखकर तेरी तबियत नहीं भरी
थी ? बोल भरे, इजलास में झूठ बोलकर राम-रामायण
की कसम खाकर जब जलानपुर के लोग मुझे ठग रहे थे,
तब भी तू खड़ा-खड़ा इसी तरह मेरा मुँह तक रहा था।

(इन्दर चुप है)

सूका : अब क्या मेरे मुँह को देख रहा है ? क्या है इस मुँह पर।
मुझे बाँधता है कि नहीं। मुझे बाँध, नहीं तो गुहार मचाती हूँ।

इन्दर : चुप रह !

सूका : क्या ?

इन्दर : तुझे लेकर जाऊँगा।

सूका : खबरदार अगर मुझे छुआ।

इन्दर : मैं उसके लिए भी तैयार होकर आया हूँ, किसी भी कीमत
तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ूँगा।

सूका : खबरदार।

इन्दर : मैं भगौती के लिए काफी हूँ।

(सूका को पकड़ने चलता है, सूका शेर करने लगती है “दौड़ो-
दौड़ो, चोर-चोर”। इन्दर अपनी पूरी शक्ति से सूका को पकड़ता
है, लेकिन उसी समय अन्दर से हाथ में लालटेन लिए अलगू दौड़ता
है। इन्दर का पीछा करता है। भीतर से घबड़ायी हुई नन्दो-राजी
निकलती हैं। गाँव के लोग दौड़े आते हैं। प्रकाश बुझता है।

[मध्यान्तर]

तीसरा अंक

(संगीत)

आहो रामा !
आहो रामा !
मानिक हमरो हैरलै हो रामा
आहो रामा ...
सरजू नदी के चिकनी मटिया
चलत पाँव विछलाय गे रामा
आहो रामा !
आहो रामा !!

कथाकार : जब दया-धर्म नहिं तन में।
मुखड़ा क्या देखो दरपन में।
तो भाई-भाई में एतवार न रहा।
भगौती अलगू में बँटवारा होके रहा।
सूका ने सोचा क्या रखा है रोने-धीने में।
वात बनने में नहीं, बात है कुछ होने में।
(मंत्र पर प्रकाश। सूका अच्छे वस्त्रों में खमिया पकड़े खड़ी है)

(संगीत)

सत ना हेराने-हेराने सतगुनी !
मुनो मुनी !
सुनो गुनी !
सत ना हेराने-हेराने सतगुनी !
(भगौती आता है)

भगौती : किसके लिए इतना सज-धज के खड़ी हो ?
सूका : अपने दिल में झाँक कर देखो।
भगौती : मेरा दिल पत्थर है।
सूका : अरे पत्थर पर ही तो भाँग पिसता है। धीकर आये हो ना।

भगौती : देख देख, तू ऐसी बात करती है तो मेरा कलेजा जल जाता है।

सूका : शुक्र है कलेजा तो है।

भगौती : सुन रे, मेरी तरफ देख !

(भगौती लजा जाता है।)

भगौती : क्या मैं इतना खराब हूँ ?

सूका : (चुप है।)

भगौती : अरे ऐसी बातन पर गुस्सा किसे नहीं आयेगा। अरे तू बोलती क्यों नहीं। इतना सज-धज के मति रहा कर। मुझे बड़ा डर लगता है। बड़ी खतरनाक है। अरे ऐसे क्यों हँसती है। कोई देख लेगा तो क्या कहेगा।

सूका : क्या कहेगा ?

भगौती : बता ना, कोई क्या कहेगा ?

सूका : मैं क्या जानूँ !

भगौती : अरे तू सब जानती है। मुझसे बनती है।

सूका : बताओ न फिर किससे बनूँ ?

भगौती : मुझे पता था, इस रंग की साड़ी तुझे खुब फबेगी। अच्छा जा, चिलम चढ़ा ला ! सुन...पास आजा, अरे आ ना, खा जाऊँगा क्या ?...आज अपने हाथ से थोड़ी वह भी पीस दे ना।

(जाती है।)

भगौती : बड़ी जालिम है। नशा ढूना कर देती है। पता नहीं क्या है इसके हाथ में। मन करता है...इसके हाथ का खाना अब खा ही लैं। यह भी क्या सोचेगी, भगौती कैसा मरद था।...अरे मैं अन्दर आ जाऊँ रे ?

(हुक्का चढ़ाये सूका आती है।)

भगौती : अरे मैं ऐसा बैसा मरद नहीं हूँ जो विन बूलाये आ जाऊँ। तू जब कहेगी तभी आऊँगा, हाँ ! अरे कुछ बोलती क्यों नहीं ?

सूका : हुक्का पियो हुक्का।

भगौती : तुम फुलाये रहो गलुक्का।

(भगौती हँसता है।)

सूका : जब ये हँसते हैं तो लगता है जैसे कोई बच्चा हँस रहा है। जब ये मारते हैं, छोटी-छोटी बात पर गाली देते हैं, अपमान करते हैं तो लगता है...हे भगवान मेरी किसमत !

५२ :: अंधा कुआँ

भगौती : अरे क्या खड़ी-खड़ी सोच रही है रे। बरबाद हो गया तेरे पीछे रे!

सूका : जो है तू ही है। तेरे ही साथ जीना, तेरे ही साथ मरना। जो करम में है, वही अपना है।

भगौती : कितनी बार कहा—उधर मत खड़ी रह। सब नजर मारते हैं। चल घर में चल! चल ना! अरे आँखें नीच कर!

सूका : अब आँख नीचू नहीं करूँगी। माथा उठाकर देवूँगी।

भगौती : किसे?

सूका : किसे?

भगौती : भवक!

(सूका दरवाजे से हँसती हुई देखती है।)

भगौती : देखती क्या है। कुत्ता हूँ जो तेरे पीछे-पीछे चला जाऊँगा। जा अन्दर जा बन्द कर हँसना!

(चिलम की आग फूँकता है।)

भगौती : कैसे हँसती है!...अरे सुन तो। (आती है।)

सूका : क्या है? मारोगे? लो मारो। कलेजा ठण्डा कर लो।

भगौती : अरे तू समझती है मैं कसाई हूँ। हत्यारा हूँ, निर्दयी हूँ। बेरहम हूँ? पर जो हूँ उसे तुम नहीं जानती।

सूका : तुम खुद नहीं जानते, हाँ!

(हँसती है।)

भगौती : अरे तू कैसे हँसती है रे!...देख खमियाँ पकड़कर मर हँस। अरे कोई देख लेगा...जुलुम होइ जायेगा!

(हँसती है।)

भगौती : मेरी बात नहीं मानेगी तो पछतायेगी!

सूका : मैं नहीं, तुम पछताओगे!

भगौती : देख लेना!

सूका : देखते रहना।

भगौती : बड़ी बनती है...किसलिये बुलाया था तुझे? अरे, भू

गया।

सूका : सब भूल जाते हो, एक ही चीज नहीं भूलते।

भगौती : सही कहती है, वही नहीं भूल पाता। वह क्यों न भूलता रे? (हँसती है।) बेमतलब हँसती है। जा अन्दर।

कोई आ रहा है।

(हरखू आते हैं सूका जाती है। धीरे-धीरे प्रकाश बुझता है। कथाकार पर प्रकाश उभरता है।)

कथाकार : क्या-क्या खेल है इस तन का

क्या-क्या मेल है इस मन का

सब कुछ किया मगर भगौती का जी नहीं भरा

अदला मरा मगर बदला नहीं मरा।

भगौती ने सूका के कलेजे पर मूसल चलाओ।

सौत आयी मगर उल्टे भगौती फँस गया।

पैर रखा जहाँ वहीं जमीन पर धँस गया।

(संगीत)

ऐसा होता है, ऐसा होता है।

भगवान की कसम ऐसा होता है।

ऐसा होता है, ऐसा होता है।

सियाराम की कसम ऐसा होता है।

मेरे राम की कसम ऐसा होता है।

(संगीत धीरे-धीरे खत्म। मंच पर प्रकाश। सूका मचिया पर बैठी है। लच्छी उसके केश संवार रही है। नन्दो—जिसकी अब शादी हो चुकी है वह गांव की कुछ औरतों के साथ दूर खड़ी बातें कर रही है।)

नन्दो : देखो न, सौतिन बनाकर ले आयी गयी। हो गयी उसकी सखी।

एक स्त्री : अपना-अपना करम है।

नन्दो : आज शिकायत करूँगी, हाँ।

राजी : अब तो भगवान से डर नन्दो। शादी हो गयी है। जो जैसा देगा, वैसा पायेगा। अब तुम्हारी भी कोई ननद है।

नन्दो : हाँ भौजी, सही कहती हो!

दूसरी स्त्री : बहुत सहा है सूका ने।

पहली स्त्री : बड़ा कलेजा है उसका। कौन है जो अब भी जिन्दा रहता।

राजी : भगवान मेरी जेठानी को सुखी रखे!

(सब जाती हैं। कुछ देर वाद तेजई-मूरत दिखते हैं।)

तेजई : हाय! क्या माल ले आया है, भगौती।

मूरत : खरीद कर ले आया है।

तेजई : मार गोरो नैना काटि जाय बदरा।

.....

तेजई : अरे एक नजर इधर भी!

मूरत : इतनी सेवा मति करो जालिम, भगौती देखेगा तो मेवा
खिलाने लगेगा। अरे अब मैं इसको लेकर भागूँगा।

तेजई : अबे भगौती से क्या फायदा! हम रहेंगे। हमारी सुगना
भी रहेंगे।

मूरत : कौआ मामा आम गिराओ
हमहूँ तूहूँ खायी

छोट-मोट के दुलहिन लायी
कौनवां में बैठायी।

मूरत : अरे भगौती आ रहा है। भागो! भागो!!

तेजई : एक नजर... बस एक नजर...

(भगौती हैं। भगौती की आवाज आती है। सूका और लच्छी भाग
कर अन्दर जाती हैं।)

भगौती : टाँग तोड़ दूँगा एक-एक की। लोग समझते क्या हैं!
भगौती का गुस्सा नहीं जानते। कौन है उधर? कौन है?
(हँसी सुनायी पड़ती है।)

भगौती : एकवार मेरे हाथ पड़ गये तो बेटे, छठी के दूध याद आ
जायेगा। एक-एक की हड्डी-पसली तोड़ डालूँगा।
(मिनकू का काका आते हैं।)

भगौती : राम राम काका।

मिनकू : यह क्या तमाशा है। कोई इधर झाँक रहा है। कोई उधर
हँस रहा है। कितना मना किया, कितना समझाया दूसरी
न लाओ! पर जहाँ अकल को ही पाथर पड़ा है...

भगौती : आइ गये भाषण देने। पहुँच गये मीन-मेख निकालने।
हर बक्त वही सूका। हाँ दूसरी लाया, तुमसे मतलब!

मिनकू : तुमसे अलग हूँ तो क्या, खून तो एक है। बदनामी नहीं
सही जाती।

भगौती : कैसी बदनामी। किस साले की हिम्मत है।

मिनकू : बस, वही कच्ची-पक्की, वही मार-पीट!
(भगौती अन्दर जाता है।)

मिनकू : अन्दर जाकर गुस्सा सूका पर उतारो।

(अलगू आता है।)

अलगू : किसके मुँह लगते हो काका!

मिनकू : क्या करूँ देखा नहीं जाता!

(हरखू आते हैं।)

हरखू : क्या नहीं देखा जाता।

मिनकू : तुम्हारा सिर। तुम्हीं लोगों ने आग लगायी इस घर में।
चौपट किया भगौती को। गाँजा भाँग, उधार... सूद पर
रुपये।

(मिनकू का जाना। अलगू रामायण पढ़ने लगता है।)

हरखू : अलगू बाबू तुम तो जानते हो। पहले मैं सिर्फ एक चिलम
पीता था। भगौती का जब से साथ पड़ा दो चिलम पीने
लगा। सूका जब से इस घर में आयी चार चिलम छः
चिलम पीने लगा। और जब से ले आया है दूसरी पूछो
नहीं।

(भगौती निकलता है।)

भगौती : क्या बक-बक करते हो!

हरखू : कुछ नहीं, कुछ नहीं। हम लोग धर्म चर्चा कर रहे थे।

अलगू : हाँ रामायण की पोथी में छिपाकर रखते हो न!

भगौती : मेरे यहाँ किसी के आने की जरूरत नहीं है। जिसे अच्छा
न लगे वह अपने घर रहे। मैं बुरा हूँ, तो हूँ। अपने घर में
हूँ चाहे जैसा हूँ।

हरखू : हाँ नीम-नीम रहेगी, कटहल-कटहल ही रहेगा?

अलगू : और कुत्ते की पूँछ... पूँछ ही रहेगी!

हरखू : सत्य बचन। अयँ, क्या कहा? तुम्हारी यह हिम्मत।

(अलगू रामायण पढ़ रहा है। तेजई-मूरत आते हैं।)

सब : राम राम।

भगौती : बन्द करो पैं पैं।

अलगू : रामायण अब इसके लिये पैं पैं है।

(अलगू जाता है।)

तेजई : ठीक है।

मूरत : ले आये हैं वही चीज़!

हरखू : क्या चीज़?

तेजई : तुम्हारे जानने लायक चीज़ नहीं है, हाँ।

मूरत : अब आप यहाँ से तशरीफ का टोकरा ले जा सकते हैं।

४६ :: अंधा कुआँ

हरखू : तशरीफ होंगे तुम्हारे बाप, तशरीफ होंगे तुम्हारे सात पुस्त !

भगौती : तशरीफ माने शरीफ !

हरखू : हाँ हाँ, जैसे मुझे मालम नहीं है तशरीफ का टोकरा कहा मुझे। देखूँगा। देख लूँगा !

(जना)

भगौती : अब जल्दी करो नहीं तो फिर कोई आटपकेगा। कहाँ है माल !

तेजई : माल नहीं खिजाव। झटपट बैठ जाव जनाव। मूरत क्या देखता अपनी सूरत। जा वहाँ पहरा दे ! कोई लौड़ा देखने न पावे। कोई औरत-मरद सूचने न पावे। अभी करता हूँ वाइस साल का जवान। मेहरबान। कदरदान। शीशे में अभी अपनी शकल मत देखिए। अपनी शकल देखिए अपनी नयी गजब्बा में, मार दिया रे रसगुल्ला उठाइ के। (इस बीच तेजई, भगौती के बालों में खिजाव लगा रहा था। मूरत और मूरत यहीं पर था। गाँव के कुछ लौड़ोंने सीटी बजाई। मूरत और तेजई ने बहुत मना किया। अन्त में भगौती लाठी लेकर दौड़ता है।)

तेजई : अरे कहाँ जाते हो। काम पूरा कर लो।

मूरत : अरे भगौती दौड़ये लिए चले गये।

(तेजई-मूरत सलाह करते हैं।)

तेजई : तू बुला !

मूरत : नहीं तू पुकार।

तेजई : नहीं तू !

मूरत : नहीं तू !

तेजई : अच्छा हम दोनों !

दोनों : ओजी छोटी भौजाई !
(सूका निकलती है।)

सूका : क्या है !

तेजई : कुछ नहीं !

मूरत : छोटी भौजाई।

सूका : क्या मतलब !

(दोनों जाते हैं। भगौती से टकराते हैं।)

भगौती : कहाँ जाते हो ! तू अन्दर जा।

(सूका अन्दर जाती है।)

भगौती : जल्दी-जल्दी।

तेजई : (खिजाव लगाता हुआ) वाह वाह ! क्या बात है। अब ऐसा है। दो घण्टे धूप में बैठना है। तुम चलो कहीं एकांत में बैठो। जब सुख जाय तब स्नान। किर कपड़े पहनकर ज्ञारे रहो महाँगुआ !

(दोनों को लेकर भगौती चलता है।)

मूरत : अरे पहनने के कपड़े तो ले लो। जाओ। अभी कोई देखे नहीं।

तेजई : नजर लग जायेगी !

(भगौती अन्दर जाता है। ये दोनों अन्दर जाँकते हैं। इशारे करते हैं। सीटी बजाते हैं। भगौती आता है। ये छिप जाते हैं।)

भगौती : अरे कहाँ गये ? कहाँ हो ? अरे यहाँ क्या कर रहे हो ?

दोनों : कुछ नहीं, कुछ नहीं।

भगौती : जाओ यहाँ से। चले जाओ।

(दोनों जाते हैं। सूका और लच्छी घर से निकल कर बाहर जाने लगती हैं।)

भगौती : कहाँ ?

लच्छी : पड़ोस में।

भगौती : अलगू के यहाँ ?

लच्छी : हाँ।

भगौती : सूका ने जो साड़ी पहन रखी है वह कहाँ से आयी है ?

लच्छी : (चुप है।)

भगौती : बोलती है कि अभी !

सूका : मैंने खरीदी है।

भगौती : खरीदी है। इन्द्रवा की कमाई से ?

सूका : उसकी कमाई पहनने की तुझे रोजी हो, मैंने अनाज बेचकर खरीदी है।

भगौती : क्यों ? सर ऊँचे उठाओ, उठाओ, मुझे देखो, हाँ, जब इस की एक-एक चीज, अनाज का एक-एक दाना, तुम्हारे जिम्मे है, तब सूका ने अनाज कैसे बेचा ? और कैसे यह साड़ी खरीदी गयी, बोल नहीं तो अभी खाल खींच लूँगा।

सूका : उसे का पता, उससे छिपकर मैंने अनाज बेचा है।

भगौती : आखिर क्यों ?

५८ :: अंधा कुआँ

सूका : इसलिए कि मैं नंगी नहीं रह सकती। मुझे तन ढकने को बस्तर चाहिए, क्योंकि मैं चौबीस घण्टे तुम्हारे घर में टहल करती हूँ।

भगौती : करना ही होगा और नंगे रहना होगा, तेरी यह मजाल कि तूने अनाज बेचकर……।

भगौती : (भीतर ले जाता हुआ) तुझे लच्छी की उतारी हुई फटी साड़ी पहननी होगी, क्या समझ रखा है तूने। (भीतर खोंच ले जाता है। लच्छी आँचल से भुंह ढक कर रोने लगती है, भीतर भगौती की डाँटी हुई आवाज सुनायी पड़ती है। हाथ में सूका के बदन से छीनी हुई साड़ी लिए भगौती लौटता है।)

भगौती : लो इसे तुम पहनो। और जब यह फट जाये, तो इसे सूका पहनेगी। (लच्छी आँसुओं को छिपा लेती है।)

भगौती : उठाओ साड़ी। (लच्छी उठा लेती है।)

भगौती : और पास आ जाओ, सुनो, जरा कान खोलकर सुनना, मैंने तुम्हें बीसों बार समझाया और आज आखिरी बार समझा रहा हूँ। तुम्हें इस घर में लाये हए, मुझे डेढ़ महीने बीत गये और तुम्हारों मैंने क्या समझाया था, यही कि तुम इस घर की मालकिन हो। सूका के संग उठो-बैठो नहीं, उससे मेल-जोल न करो। अगर वह इसके खिलाफ एक भी कदम चले तो उसे डाँट दो। उसका खाना बन्द कर दो या मुझसे कह दो।

लच्छी : (सिर हिलाती है।)

भगौती : मन भर का सिर न हिलाओ, जबान से बोला करो, खाना कौन बनाता है?

लच्छी : दीदी!

भगौती : खबरदार! जो फिर सुकिया को दीदी कहा, उसका नाम लिया करो, जैसी करनी, वैसी भरनी। (उसी समय बाहर से राजी आती है और चुपचाप भीतर चली जाती है।)

भगौती : जा देख आ, राजी कहाँ और कैसे आयी है? (लच्छी भीतर चली जाती है। भगौती आँगन में चक्कर लगाता है।)

कुछ क्षणों में ही दायें हाथ में लोटा लिये हुए लच्छी आती है।

भगौती : क्या है?

लच्छी : कुछ नहीं, आग लेने आयी है। (लोटा बढ़ाते हुए) यह भाँग है।

(पूरा लोटा एक ही साँस में पी जाता है।)

भगौती : आग लगाय जमालों दूर खड़ी, इसे कोहार का घर समझ रखा है। आग लेने आयी है।

राजी : (जाती हुई) कोहार क्या, हैवान से भी बदतर।

भगौती : लेकिन एक दिन भी चैन नहीं पड़ता बिना इस घर में आये।

राजी : हमें बाँट कर अलग कर दिया, पर हमारा खून तो नहीं बँटा। मकान बँट गया, घर तो एक है। हम हजार बार आयेंगे-जायेंगे अपने घर में। पीटते रहो अपना कपार। गुस्सा जाकर दिखाओ अपने दुश्मनों पर!

(राजी चली जाती है, दिन डूब चुका है। आँगन के किनारे-किनारे अंधकार की पहली पर्त अब फैल रही है। भगौती बाहर चला जाता है। लच्छी एक क्षण चुपचाप खड़ी रहती है, फिर एकाएक रो पड़ती है। भीतर से चिंशांग लिये सूका आती है।)

सूका : मत रोओ। न रोओ मेरी लच्छो! (लच्छी उसके अंक में जैसे छिपती जा रही है) रोने के लिए मैं हूँ ही। मेरे जीते अगर तुम्हें भी रोना पड़ा तो मेरे आँसू बेकार हैं। मुझे देख, रो नहीं, आखिर हुआ क्या, डाँटा है, मारा है क्या, बता न मुझे।

(इस बीच राजी अपने हिस्से में चौक पूर रही थी।)

राजी : दीदी सुनो एक बात। (दोनों आती हैं।) हाँ, तनिक अकिल से काम लेने की जरूरत है। हरदम रोती रहोगी तो बड़कू को शक पड़ जायेगा। तनिक हँसा बोला करो।

लच्छी : कैसे हँस बोलूँ। दाढ़ीजार का मुँह नहीं देखा जाता।

सूका : (चौक पूरती हुई) ई शंकर भगवान हैं। ई गौरा पार्वती हैं।

राजी : ई हैं छट्टी भवानी। ई है साँप। ई है शंकर वाहन।

लच्छी : मतलब का है दीदी?

सूका : मतलब राजी बतायेगी।

राजी : दीदी सब जानती हैं। सब पीकर बैठी हैं। देखो…… ई तो है संसार। हमार माई बताती थी कि भवानी हैं तभी तो

० :: अंधा कुआँ

भुवन है। शंकर भगवान हैं तभी तो इतना धोरज है। अरे, शंकर भगवान से ज्यादा कौन सहेगा। एक ओर सांप, दूसरी ओर जहर का प्याला। बीच में हैं गौरा पार्वती। (सका आँचल से प्रणाम करती है।)

राजी : बस, दीदी को देखती हूँ, सब कुछ समझ में आ जाता है। (अलग आता है। सूका लच्छी चली जाती है।)

राजी : सुनो, इहाँ चृपचाप खड़े हो। किसने कहा दिन रात इतनी मेहनत करो।

अलग : बात का है?

राजी : हमसे अकेली अब नाहीं रहा जात। इहाँ खड़ा होइके कहो सोलह घण्टे घर में रहेंगे। आठ घण्टे खेतीबारी में।

अलग : अच्छा अयोध्या जी के मेला चलेंगे।

राजी : बैलगाड़ी से नाहीं जाऊँगी, मोटरगाड़ी से...। (भगौती आता है।)

भगौती : लच्छी ! ओ री लच्छी ! (आती है) क्या कर रही थी। अरे बोलती क्यों नहीं?

लच्छी : बैठी थी।

भगौती : पसीने से तर क्यों है?

लच्छी : भीतर गर्मी है।

भगौती : तो बाहर बैठो न। मरने दो उस चुड़ैल को भीतर, तुम्हें क्या?

लच्छी : (चुप खड़ी है।)

भगौती : जावो अपना बिछावन उठा लाओ, इसी खाट पर बिछा लो, औंजोरिया रात है। बस यहीं आराम करेंगे। (उसी दीच बाहर से तेज़ी और मूरत की आवाज आती है 'ओ भगौती भाई' और इस पुकार के साथ-ही-साथ वे आने लगते हैं, लच्छी तेजी से भीतर भागती है। वे दोनों हाथ में लाठी लिए हुए आँगन में आ जाते हैं।)

तेज़ी : मरदवा सामी कहीं के, हरदम चल्हे में क्या धुसे रहते हो?

मूरत : अरे भाई क्यों नहीं, कहा जो है मरद मोछारा दूसर जोय दूर्है अलगि जनि देख्यो कोय, अब तो उसे चौबीस घण्टे रखायेंगे न।

तेज़ी : हाँ, और क्या, दूध की जली बिलार माठ फूँ-फूँकर पीती है।

भगौती : ओ हो अब मेरी भी तो सुनो। पहले यह बताओ काम हो गया कि नहीं?

मूरत : काम क्यों नहीं होगा! कभी ऐसा हुआ भी है कि काम न हो।

तेज़ी : पक्के गुद्याँ हैं भाई। जो कह दिया, वह समझो हो गया। भगौती : सच!

मूरत : और क्या झूठ! सब पक्का इन्तजाम करके आये हैं।

तेज़ी : जैसे ही खाना-वाना खाकर बड़े गाँव में सोउता पड़ेगा, बस उसी समय इंदरवा के गाँव में ठीक उसी के घर में आग लगेगी।

मूरत : फिर हम लोग यहीं से तमाशा देखेंगे।

भगौती : कुछ धुआँ-पानी हो जाय, बम शंकर।

तेज़ी : अभी कुछ नहीं भाई, पहले काम, फिर इनाम।

भगौती : काम तो हुआ ही समझो जिसमें तुम्हारे हाथ लेंगे वह काम न हो, क्या मजाक करते हो!

मूरत : चलो बाहर बैठेंगे, वहीं से इंदरवा का घर जलते हुए देखेंगे।

तेज़ी : बस तभी कुछ होगा।

(दोनों बाहर जाते हैं, कुछ क्षणों के लिए आँगन सूता हो जाता है। दीतर से सूका और लच्छी आँगन में आती हैं, उसी समय बाहर से भगौती आता है। सूका तेजी में लच्छी से दूर हट जाती है।)

भगौती : देखो, जलदी से तीन थाली खाना परोसकर बाहर बैठक में लाओ।

लच्छी : इतना खाना, लेकिन कहाँ बना है?

भगौती : मैं इसका जिम्मेदार नहीं, जलदी करो।

(तेजी से बाहर मुड़ जाता है। लच्छी-सूका दोनों पास आ जाती हैं, आँगन में सप्तमी की चाँदनी कंली हुई है। लेकिन दोनों चुप शून्य में देख रही हैं।)

सूका : तेरे लिए फिर से खाना बनाऊँगी।

लच्छी : नहीं-नहीं दीदी, सच, राम कसम मुझे तिल भर भूख नहीं है।

सूका : तब तक लग जावेगी न! फिर से खाना बनाने में मेहनत ही क्या है। चूल्हा जल ही रहा है, थोड़ा-सा चावल दाल

२ :: अंधा कुआँ

डाल दूँगी, बस !

लच्छो : लेकिन दोदो एक शर्त होगी, तुम भी खाओ, तभी मैं खाऊँगी, अकेली नहीं।

सूका : मैं कैसे खाऊँगी। खा ही पाती तो क्या ! जब तक यह पुरवैश्या बहेगी, रात को मैं कहाँ खा पाती हूँ। उस बार इसने इसी पेट ही में तो हनकर लात मारा था, तब से यह बैरिन पुरवैश्या और यह अभागा पेट।

लच्छो : (उदास चुप है।)

सूका : तुम यहीं बैठो, मैं बाहर थाली दे आऊँ।

(सूका के साथ लच्छी भी भीतर जाती है। सूका के दोनों हाथों में दो परोसी हुई आलियाँ हैं। एक थाली लच्छी लिये हुए है, दोनों आँगन पार करती हुई बाहर जाती है। थाली देकर सूका लौटती है और भीतर चली जाती है। बाहर से लच्छी आँगन लौटती है और भीतर चली जाती है। बाहर से लच्छी आँगन में आकर नंगी खाट पर ओंधी गिर पड़ती है और सिसकने में आकर नंगी खाट पर ओंधी गिर पड़ती है और सिसकने में आकर नंगी खाट पर ओंधी गिर पड़ती है और सिसकने में आकर नंगी खाट पर ओंधी गिर पड़ती है और सिसकने में आकर नंगी खाट पर ओंधी गिर पड़ती है।)

सूका : रोओ नहीं, रोने से क्या होता है ?

लच्छो : आज सात दिन हो गये दोदो, माघोपुर वाले की कोई हाल-चाल न मिली।

सूका : आज सत्तमी है न, सोम दिन।

लच्छी : हाँ, है तो, क्यों ?

सूका : पहले मुझे क्यों न होश धराया। मेरी तो सुधि ही जलने लायक है। आज उसकी चिट्ठी जल्लर आयी होगी।

लच्छो : पियारे के घर अभी जा रही हो ?

सूका : और नहीं तो क्या, पियारे की माई चिट्ठी लिए हुए मेरा रास्ता तक रही होगी। घर देखना, अभी आयी ! (तेजी से दायीं और मुड़ जाती है। लच्छी प्रसन्नता से एक बार खड़ी होकर कमर पर हाथ रखकर जैसे कुछ सोचने लगती है। फिर तेजी से आकाश की ओर निहारती हुई आँचल को ऊपर उठाती हुई नाच पड़ती है। पृष्ठभूमि में आहट होती है, लच्छी खड़ी हो जाती है।)

भगौती : और खाना है ?

लच्छो : (सिर हिलाती है।)

भगौती : सब खाना परोस दिया था ?

लच्छो : हाँ।

भगौती : अच्छा, कोई बात नहीं। तो सुकिया फिर से खाना बना रही है न ?

लच्छो : हाँ।

भगौती : बनाने दो।

(भगौती बाहर लौट जाता है। लच्छी फिर आकाश की ओर निहारती है, फिर नाचने लगती है। दायीं और मुड़कर खिड़की की ओर दौड़ती है, आँगन में लौटती है और दुइदरे की ओर देखती हुई सूका के आने की बाट जोहने लगती। सूका दिखाई पड़ती है। लच्छी बच्चों की तरह दौड़कर आँगन में आते-आते सूका के गले से लग जाती है।)

सूका : जा पहले धीरे से बाहर की किवाड़ उठगाँ आ।

(लच्छी तेजी से बाहर जाती है। सूका दुइदरे का चिराग उठाकर आँगन में लिए खड़ी रहती है। लच्छी तेजी से लौटती है)

सूका : पढ़ो।

लच्छो : सुनो दीदी।

सूका : सुनाने में देर लगेगी, तुम अपने मन में जल्दी पढ़ लो, तब तक मैं इधर-उधर देखती रहती हूँ।

(चिराग खाट की पाटी पर रखकर वह इधर-उधर पहरा देने लगती है लच्छी जमीन से घुटने टेक कर चिट्ठी पढ़ चुकती है और तेजी से उठकर प्रसन्नता से चिट्ठी को अंक में छिपा लेती है।)

सूका : पढ़ लिया ?

सूका : (प्रसन्नता से) क्या बात है ?

लच्छो : लिखा है न दीदी ! पहले उन्होंने तुम्हारा पैर छूना लिखा है। फिर लिखा है न दीदी ! हाँ दीदी लिखा है कि... कि उन्होंने लिखा है कि मैं दीदी से हाथ जोड़ता हूँ उसके पैरों गिरता हूँ, वह जल्दी से मेरी लच्छी को मेरे हाथ सौंप दे।

सूका : (एकाग्र हो चिराग की लौ देख रही है।)

लच्छो : और लिखा है न दीदी ! कि इसी पूर्णमासी की रात में मैं अपनी बुआ, पियारे की माँ के घर जाऊँगा।

(सूका को अपलक देखने लगती है।)

लच्छो : आज सत्तमी है न दीदी ! पूर्णमासी आज से आठ रोज है,

६४ :: अंधा कुआँ

(उँगली पर गिनती हुई) उस दिन मंगल पड़ेगा दीदी ! मंगल मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है, बोलो क्या सोच रही हो दीदी !

सूका : लेकिन इस घर से निकलने के लिए मंगल अच्छा दिन दिन नहीं है। मंगल ही के दिन मैं इस घर से निकली थी।

लच्छी : (उदास चुप है।)

सूका : पूर्णमासी को सारी रात अंजोरिया रहती है।

लच्छी : तो किर क्या होगा दीदी ?

सूका : मैं किसी तरह तुम्हारे लिए अच्छी साइत विचरवाऊँगी।

इस बोच में मैं हीरा को... हीरा ही नाम है न !

लच्छी : हाँ, यही नाम है।

सूका : तुम नाम नहीं लेतीं ?

लच्छी : नहीं दीदी ! मैं उन्हें माधोपुरवाला कहती हूँ। उनसे मेरा विवाह पक्का हो गया था, लगन चढ़ गयी थी, इधर-उधर हल्दी धूम गयी थी। यहाँ तक कि दीदी ! एक दिन देह में बकवा भी लग गया था।

सूका : फिर क्या हुआ ?

लच्छी : वह जो मेरा काका है न, जिसको मेरे दादा मरते समय मुझे सौंप गये थे, उसी ने मेरा बेड़ा डुबोया। यहाँ के तेजर्द-मूरत को हैजा ले जाय, यही दो इसे लेकर काका के पास गये थे। इसने माया दिखायी, उस कलमुंहे ने मेरा सौदा कर लिया।

सूका : कितने पर ?

लच्छी : मुझे यह भी पता न चला, मैं तो हरदम रोती रही।

सूका : लेकिन चढ़ी लगन टटी कैसे ?

लच्छी : जवरदस्ती तोड़ी गयी दीदी, उसने माधोपुर कहलवा भेजा कि उसके घर ब्रह्म है। माधोपुरवाले के आगे-पीछे कोई न था, मुजहरे काका के मुँह में स्याही पोतने के लिए वह न बिरादरी बुला सका, न उसमें इतना जोर जुलूम ही था कि वह लठिहा इकट्ठा कर दहिजरे के घर में घुस मेरी बाँह पकड़ लेता। (रोती हुई ध्यण भर के लिए चुप हो जाती है) लेकिन भाग में तो था पहले जलालपुर, ब्रह्म की काँटी कौन मेटता दीदी !

सूका : वहो मेटेगा, रोती क्यों है ?

(बाहर से भगौती आता है, उसकी आहट पाते ही बोतों दो ओर हट जाती हैं।)

भगौती : जा, बाहर से बरतन उठा ला।

(सूका बाहर जाती है।)

भगौती : सुकिया तुम से कुछ कह तो नहीं रही थी।

(लच्छी सिर हिलाती है, बाहर से जूठे बरतन लिये सूका आती है और चुपचाप भीतर चली जाती है।)

भगौती : उससे तुम्हारा कभी झगड़ा क्यों नहीं होता ? क्या बात है ?

लच्छी : जब मेरा बोलना-चालना मना है, तो झगड़ा कैसे होगा !

भगौती : चार चिलम गाँजा तो लेती आना, बुटबलिया में से लाना, उस दिन जो मैं लाया था। जरा कलीदार लाना, चिप्पड़-चिप्पड़, हाँ।

(पोटली में बैंधे हुए गाँजे को सूका भीतर से ले जाती है और उसी तरह वह भगौती के सामने फेंक देती है।)

भगौती : सीधे से दे देती तो क्या हाथ में नागन डंस लेती ! बेहया कहीं की (पोटली खोलकर गाँजा लेता हुआ) अभी तुम्हारे प्रेमी को पता चलेगा कि मुँह में कितने दाँत होते हैं, फिर उसके नाम पर रोना।

(घूरता हुआ बाहर चला जाता है।)

लच्छी : वडे गाँव में कुछ होने वाला है क्या दीदी ?

सूका : हाँ... भले हो ! मैं जल रही हूँ तो वह क्यों न जले, जले खब !

लच्छी : तो इन्दर का घर जलेगा आज !

(एकाएक चुप होकर शून्य में देखने लगती है।)

लच्छी : क्या सोच रही हो दीदी, बोलो न !

सूका : इस घर से तबाह होकर अच्छे के लिए मैं उसके संग भागी थी। लेकिन जब भाग में अच्छा लेकर उतरी ही न थी, तो क्या होता (रुक कर) हैरान होकर पराये की बाँह भी पकड़ी वह भी आदमी न निकला। जहाँ गयी डाढ़ो रानी, तहाँ पड़ा पाथर-पानी।

लच्छी : (उदासी से चुप है।)

सूका : हीरा को बुलवाऊँगी। सौगत्य दिला कर सब बातें उससे

अंधा कुआँ

साफ कर लूँगी । मैं नहीं चाहती कि तुम्हें मेरी तरह कहों
भटकना पड़े ।

(लच्छी बढ़कर अपना मुँह सूका के सीने में गड़ा देती है ।)

सूका : (उसके खुले सिर को आँचल से ढकती हुई) तुम्हारे भाग पर,
अपने भाग की साथा नहीं पड़ने दँगी बिट्ठी । घबड़ाओ
नहीं, सब मेरी तरह अभागे नहीं होते ।

(लच्छी उसके अंक में अपने मुँह को गड़ाती जा रही है ।)

सूका : अपने कलेजे पर यह भो एक बड़ा पथर रख लूँगी, मैं यहाँ
इन सींकचों में अकेली रहकर काट लूँगी, लेकिन सन्तोः
होगा कि मैं तुम्हें तो... ।

(सहसा बाहर से गाँव के तमाम आदमियों का कोलाहल उभरता
है, सूका-लच्छी दोनों घबड़ाकर एक दूसरे को देखने लगती हैं,
बाहर से लाठी लिये हुए भगौती दीड़ा आता है ।)

भगौती : चलो दरवाजे पर खड़ी होकर देखो न, चलो ! सूका, आज
तेरी लंका में आग लगी है, जा आँख पसार कर देख, तेरे
इन्द्र का घर स्वाहा हो रहा है ।

भगौती : जल में रहकर मगर से बैर । अरे ! तू रो नहीं रही है, जरा
भी अफसोस नहीं तुझे ? तेरे प्रेमी का घर जले और तू
मंगल गावे, यही तेरी प्रीति की रीति है ?
(हँसता है ।)

सूका : ऐसी प्रीति में लगे आग । तुझे भी डसे नागन और इन्द्रवा
की टिकठी के साथ तू भी उसके पाँव दबाने जा ।
(भगौती जाता है । लच्छी रो रही है । राजी आती है ।)

राजी : क्या हरदम रोती रहती है । रोने से कुछ मिल जायेगा ?
अरे जवानी नहीं रहेगी तो कोई न पूछेगा ।

लच्छी : दीदी क्या गिन रही हो ?

सूका : आज पूर्णमासी है न, परसों आयेगा हीरा । लच्छी मेरी
बेटी है, उसे पति के साथ विदा करँगी ।
(मंच से प्रकाश बुझकर गायकों पर उभरता है ।)
(संगीत)

जैसे कलश पर दियना जरत है

जैसे करहिया में तेल रे

सीता के मंगिया सेंधुर भल सोहे
राम के तिलक लिलार रे... ।

(प्रकाश बुझकर मंच पर उभरता है । राजी बैठी हुई लच्छी को
चूड़ियाँ पहना रही है । अंधेरी रात है । हाथ में लालटेन लिए
सूका आती है । साथ में हीरा है ।)

सूका : देख, तेरा हीरा आ गया ।

राजी : पहुना ।

हीरा : पर्याँ लागी ।

(राजी के पाँव छूता है । सूका हीरा को चौकी पर बैठाकर पैर
धुलती है । वहीं संगीत उभरता है ।)

जैसे कलस पर दियना जरत है

जैसे करहिया में तेल रे ।

सीता के मंगिया सेंधुर भल सोहे
राम के तिलक लिलार रे ।

जितने मैइया मोरी आरती उतारें
उतनै ढरै लागे आँसु रे ।

आज बसयारिया जनकपुर होइ हैं
हमरौ अवध अँधियार रे ।

(इस बीच हीरा को जलपान कराया गया है । सामान सहेजवाया
गया है । राजी लच्छी का शृंगार कर रही है ।)

सूका : माथे पर टिकुली नहीं लगायी । ये सब टिकुली लगा
डालना । माँ ने मुझे दिया था, मैं एक भी न लगा सकी ।

(लच्छी अपने आँचल से सूका और राजी के दौर छूती है और उसे
अपने माथे लगाती है ।)

सूका : (भरे कंठ से) सौभाग्यवती हो, दूधी नहाव, पूतौ फलो !

राजी : सदा सुहागन रह !

राजी : इस गठरी में पूड़ियाँ बँधी हैं, खाँड़ भी है । रास्ते में किसी
चीज की तकलीफ न करना । खाते-पीते, उठते-बैठते जाना ।

लच्छी बहुत पैदल नहीं चली है ।

हीरा : जहाँ कैसे, कोई भी सवारी मिली, मैं पैदल नहीं चलने
दँगा, विश्वास रखना ।

सूका : विश्वास !... क्या होता है विश्वास ?

हीरा : देख लेना !

सूका : अगर रास्ते में कोई तुम्हें पकड़ने लगे... ? लड़ाई करे ?

हीरा : पूरी ताकत से सामना करूँगा ।

सूका : अगर दुश्मन के पास तुमसे ज्यादा ताकत हो ?

हीरा : तो अपनी ताकत में चरित्र-बल मिलाकर लड़ूँगा ।

सूका : मुझसे ऊँची-ऊँची बातें कर रहे हो ?

लच्छी : नहीं दीदी, यह बहुत अच्छे हैं ।

सूका : पहले तो सभी अच्छे होते हैं । पर जब सच्चाई सामने आती है……

राजी : दीदी की बातों का बुरा न मानना ।

हीरा : कभी नहीं । दीदी को जानता हूँ ।

सूका : लच्छी से प्यार करते हो । प्यार माने ?

हीरा : जिम्मेदारी ।

सूका : और ?

हीरा : उसकी सदा रक्षा करना ।

सूका : और……

हीरा : उसी के साथ जीना और मरना ।

सूका : मरना क्यों ? जियो……जुग-जुग जियो ।

(हीरा और लच्छी के गाँठ जोड़ती हैं। हीरा गठरी उठाता है। विदा देती है ।)

(संगीत उठता है)

जैसे कलम पर दियना जरत है,

जैसे करहिया मां तेल रे

सीता के मंगिया सेंधुर भल सोहे,

राम के तिलक लिलार रे ।

आजु बसियरिया जनकपुर होइ हैं,

हमारी अवध अँधियार रे……

(लच्छी सूका के पैर पर अपना माथा टेकती है, हीरा भी उसके पैर छूता है, सूका रोती हुई लच्छी को आगे बढ़ाती है, हीरा-लच्छी बाहर निकलते हैं ।)

सूका : (लालटेन दिखाती हुई खड़ी रहती है) मुझे न निहारो, जाओ मेरी बेटी, इस घर की तुझ पर कभी साया तक न पड़े, जाओ मेरी……

(रो पड़ती है ।)

(चिराग लिये खड़ी रहती है, धीरे-धीरे प्रकाश बुझता है। प्रकाश संगीत पर उभरता है ।)

चौथा अंक

(संगीत)

तोहिं मनाऊँ देवी सारदा

हिरदे उठी हिलोर

सूका को फिर क्या हुआ

हृदय बढ़ाओ डोर

हृदय बढ़ाओ डोर

सुनो अब इसके आगे

का विधना का लिखा

और क्या करम के आगे !

कथाकार : यहीं तो सारा गाँव कहता है । लेकिन अब तक लच्छी का कोई सुराग नहीं मिला । तब से पुलिस ने दो बार इन्दरवा को पकड़ा, लेकिन कहीं कुछ न पता चला । भगौती ने क्या कुछ नहीं किया लच्छी को फिर से पाने के लिए । कर्जे लिए । पुलिस-हाकिम को धूस दिए । जादू-टोना किया । ओझा-सोखा ने जो-जो कहा, भगौती सिर मारता रहा । दर-दर, हाट-बाजार, मेला-ठेला हर जगह भगौती भटकता रहा । मौका पाकर ऐसी ही हालत में इन्दर ने भगौती को मारा । बुरी तरह से मारा । दायाँ पैर टूट गया । भगौती ने खाट पकड़ ली ।

(मंच पर प्रकाश । भगौती खाट पर पड़ा है । राजी और सूका खड़ी देख रही हैं । पास दो औरतें बैठी हैं पांच पसारे ।)

सूका : देखो खाट लिए पड़े हैं । बायाँ पैर किसी तरह जमीन पर रखने भी लगे । लेकिन दायाँ पैर छूने ही नहीं देते । मुडेरा के बैद आये थे । कहाँ रतनपुर और चिलमा, जुग-जुग जियें अलग बाबू, ढूँढ़-ढूँढ़कर कई पैर बैठाने वालों को ले आये । लेकिन किसी की न चली । सभी यहीं कह-कह कर

लौट जाते हैं कि पैर की हड्डी टूट गयी है।

राजी : अब क्या होगा दीदी ?

सूका : होगा क्या ? जो जैसी करनी करे, सो तैसा फल खाय। जो करनी मैंने की थी, वह मेरे आगे उतरा। मैं उसका फल भोग रही हूँ और मरते दम तक भोगूँगी। और जो इन्होंने किया है, उसका लेखा-जोखा, हे भगवान् त्रिलोकीनाथ तुम्हीं जानो। (रुक कर) लोग कहते हैं कि मेरी कोख अंधी है, इसलिये जब मैं मरने भी गयी तो मुझे मेरे करम में अंधा कुआँ ही मिला। पर मैं समझती हूँ वह कोई कुआँ न था, वह था इस गाँव का झूठ।

(भगौती की कराह)

सूका : जब कराहते हैं तब उठ के दौड़ो। जब पुकारें तब दौड़ो, न दिन देखो, न रात। कराहते-पुकारते अगर तुरन्त न पहुँचो, तो ऐसी-ऐसी गाली, कलमुंहा चारपाई पर पड़े-पड़े मेरी सात पुस्त तारने लगता है। लाचार पड़ा है, गुह-मूत न करूँ तो कल ही सङ जाये, फिर भी ऊपर से हँसता रहता है, बोली-तानों की अग्नि-बान छोड़ता रहता है।

(भगौती की खांसी। कराहना।)

सूका : भीतर से जी होता है कि सड़ने दूँ। जिस लाठी और बेंत से मुझे मारा है, आज उसी के मूँह में डाल दूँ कि खा इसी को। जिन लोहों और सीकचों से मुझे दागा है, जी कहता है कि उन्हें उसके कलेजे में डाल दूँ...लेकिन...नहीं।

(फक्फक कर रो पड़ती है।)

राजी : न रोओ दीदी ! न रोओ, क्या करोगी।

सूका : जिसने मुझे जान से मार डालने के लिए कौन-कौन सा जतन नहीं किया, आज मैं उसी को जिलाने के लिए क्या-क्या नहीं कर रही हूँ। यह जौ उसी के लिए बीन रही हूँ। कल मंगल है, इसे सतनारायन वादा की कथा सुनवाऊँगी। कौन जाने दान-पुण्य ही से अच्छा हो जाये। (भीतर से अंगड़ाई लेती हुई नन्दो निकलती है। पहले की नन्दो में और आज की नन्दो में इतना अन्तर है कि आज वह समुराल के गहने पहने हुए है, लेकिन अपने रूप और बदन से वह पहले की अपेक्षा पीली पड़ गयी है।)

नन्दो : (सूका से दबे स्वर में) भौजी, थोड़ा-सा गुड़ दे दो, शर्वत बनाऊँगी।

सूका : उत्तर वाले घर में देहरी के पास तो रखा हुआ है, जाकर घोलती पीती क्यों नहीं !

(नन्दो भीतर लौटती है।)

सूका : मूँह झोंसी कहीं की, आज गुड़ माँगने चली है !

राजी : तो कुछ देती क्यों हो ? जिसने पानी माँगने पर आग दिया है उसे आज आग दो न !

सूका : क्या करूँ, मुझसे यह सब होता ही नहीं।

राजी : मैं तो चली दीदी ! घर बच्चा जग गया होगा।

सूका : बच्चा !

राजी : हाँ, उसे सुलाकर आयी थी। अब जग गया होगा। (भगौती जगता है।)

भगौती : मेरे घर किसी औरत के आने-जाने की जरूरत नहीं है—अपनी-अपनी खिचड़ी अपना-अपना ताल।

(राजी खड़ी रहती है और शेष औरतें भगौती को धूरती हुई चली जाती हैं।)

भगौती : घर-घर की चुगली, दूसरे-दूसरे का परपंच, यही सब करने के लिए, ये औरतें दुपहरी में इकट्ठी होती हैं।

सूका : यही करनी है तो मरने पर तुम्हें गाँव के चार आदमी नहीं जुरेंगे, जो तुम्हारी टिकठी के पीछे-पीछे दो-चार बोझ लकड़ी लेकर नदी घाट तक जायें।

भगौती : तू अपनी चिन्ता कर, मुझे औरत नहीं चाहिए, क्या करेंगी ये झुठमुंही रुठकर और मुझे आदमी की कमी नहीं है। कह तो इसी चारपाई पर पड़े-पड़े अभी दो-सौ आदमी इकट्ठा कर दूँ।

सूका : तब क्यों नहीं इकट्ठा किया, जब मुड़ेरे में वह तुम्हें मुरदा बना रहा था, मुझे भूजने के लिए पैर तुड़वाकर घर आये हो।

भगौती : घबड़ाओ नहीं, पैर ठीक हुआ नहीं कि तुरन्त उसी रात अगर इन्दरवा का खून नहीं किया तो मैं अपने बाप का नहीं।

(जोर से खांसने लगता है। सूका बढ़कर उसके सिर को उठाती है और खाट के नीचे रखे हुए मिट्टी के एक बर्तन में उसे थकाती है।)

७२ :: अंधा कुआँ

भगौती : मेरा सरहाना ऊँचा कर दे । मैं इस तरह नहीं रहूँगा ।

सूका : तो जाकर बाहर टहल आवो न । हरखू को बुला लो, अब तो वे गाँजा पीने नहीं आते । जाओ बुला लाओ न तेजई मूरत को ।

भगौती : चुप रहती है या नहीं ।

सूका : जाओ अपने तेजई मूरत के घर हो आवो । वे तो तुम्हारे ससुर-समधी थे, कहाँ हैं अब ?

राजी : अच्छा दीदी, अब मैं चलूँगी । कथा की सामयी में जो कुछ बाकी रह गया है, उसे मैं कल जुटा दूँगी, चिन्ता न करना ।

सूका : अलगू बाबू को भेज देना ।

(राजी जाने लगती है ।)

भगौती : (व्यंग से) अलगू से कहना, उसके बिना सूका को नींद नहीं आ रही । देख क्या रही हो ? मैं वही भगौती हूँ, भूलना नहीं । जरा अच्छा तो होने दे, तब बताऊँगा कि लच्छी कहाँ है और तुझी से ढूँढ़वाऊँगा ।

सूका : (चुप देखती है ।)

भगौती : खूब बदला लिया तूने मुझसे । लच्छी का इस घर से निकल जाना, इससे बड़ा बदला और कुछ नहीं हो सकता । (बाँसता है) तेरे इस बदले से मैं बुड़ा हो गया, जैसे मेरी कमर टूट है । इन्द्रवा नहीं निकल जाता, मैं उसका खून पी लेता । (कराहकर) वहुत समझ-वूझकर तूने मुझसे बदला लिया (कराहकर) वहुत समझ-वूझकर तूने मुझसे बदला लिया । सूका । अच्छा तू ही सच-सच बता, तूने मुझसे बदला नहीं लिया ?

सूका : अगर मुझे बदला ही लेना होता, तो मैं कुएँ में डूबने नहीं जाती । याद है वह रात, तूने मुझे इसी पावे में बाँध रखा था और उसी रात को यहाँ इन्द्रवा आया था, मैं उसके संग भाग सकती थी ।

भगौती : तो भागी क्यों नहीं ?

सूका : क्योंकि मुझे बदला नहीं लेना था । बदला ही लेना होता तो मैं तुझे बहुत आसानी से कभी भी जहर दे सकती थी ।

भगौती : वह उतना बड़ा बदला नहीं होता ।

सूका : भगवान के लिए मुझे ऐसा न कह । एक बार तो मुझ पत्नी

की तरह देख ले । निगोड़े कहीं के, अगर मुझे बदला लेना होता तो आज मैं तेरे साथ इस खून, पीप और पैखाना-पेशाब में न सनी होती ।

भगौती : यह भी एक तरह का बदला ही है । जो एक दिन मेरी दया पर जी रही थी, आज उसकी दया पर मुझे जीना पड़ रहा है यह भयानक बदला है ।

सूका : नहीं, तू अपनेपन पर जी रहा है । मेरी दया की बात होती तो मैं तेरी इतनी सेवा न करती ।

भगौती : मुझसे और भी कोई बहुत बड़ा बदला लेना होगा । (सूका रोने लगती है और सिर थामकर जमीन पर बैठ जाती है । बाहर से अलगु आता है । सूका सिसकती हुई आँचल में मुँह छिपा लेती है ।)

अलगू : घड़ाती क्यों हो, बाबू के पैर जल्दी ठीक नहीं हो जायेगे क्या ? कल सतनारायन बाबा की कथा सुना दो । इसी शुक्र के दिन इन्हें डोली से शहर ले जाऊँगा और कितने रुपये क्यों न लगें, पैर ठीक कराके छोड़ँगा ।

सूका : तुम्हारा ही तो आसरा है बाबू और मेरा कौन है !

भगौती : देख सुकिया, तू बहुत तिरिया-चरित मेरे सामने न दिखा, रोना-धोना हो तो मेरे सामने से हट जा ।

(सूका अलगू की बाँह पकड़े भीतर चली जाती है, कुछ क्षणों बाद भीतर से नन्दो निकलकर बाहर जाने लगती है ।)

भगौती : (नन्दो को रोक कर) हे री नन्दो, सुन, इधर आ । (पास आकर खड़ी हो जाती है ।)

भगौती : तेरे गाँव की ओर तो लछिया कहीं नहीं सुधियाती ? (नन्दो सिर हिलाती है ।)

भगौती : फिर वह कहाँ हो सकती है ? क्या रुग्याल है तेरा । नन्दो : (इधर-उधर देखकर) इन्द्रवा ही ले गया होगा भइया ।

भगौती : पर कहीं सुधियाती नहीं, इन्द्रवा तो यहीं है अपने गाँव में, लेकिन लछिया का कोई पता नहीं चलता ।

नन्दो : दहिजरे के पूत ने कहीं ले जाकर बैंच दिया होगा । कलकत्ता, कानपुर तो मरदुआ के पाँव तले रहते हैं ।

भगौती : ठीक कहती है, लछिया को बैंच लिया होगा ।

नन्दो : और क्या, वह लच्छी को अपने पास क्यों रखता । दहिजरे ने जिस पर दाँत गड़ाया है वह तो अभी घर ही में है ।

७४ :: अंधा कुआँ

(नन्दो बाहर निकल जाती है। भीतर से अलगू के साथ सूका आती है।)

सूका : (अलगू से) सब चीज से सचेत रहना बाबू। और उसका भी ख्याल रखना।

अलगू : वेफिकर रहो।
(चला जाता है।)

भगौती : किसका ख्याल रखा रही हो?

सूका : खलिहान में चार बोझ पुआल है, खुंटे पर बैल हैं और सिर पर इन्द्रवा दुश्मन है।

भगौती : इन्द्रवा मेरा क्या टेढ़ा कर लेगा?

सूका : नहीं, वह आकर तुम्हें पूजेगा, उसका घर फूंका गया है, उसकी हरी फसल काटी गयी है, दो बीघे ऊख में आग लगी है, फिर वह तुम्हें छोड़ देगा। कौन है उस दहिजरे के आगे-पीछे रोने वाला?

भगौती : तो मेरे ही आगे-पीछे कौन रोने वाला है। अच्छा होने दो, अब की उसे जान से न मरवा डालूँ तो मेरा भगौती नाम नहीं।

सूका : बड़ा नाम है! वाह!!

भगौती : दूर हो जा मेरे सामने से। खुद तो साही का काँटा बनकर मेरे घर में आयी, मेरा नाम बैंचा...।
(आवेश में गला रुंद जाता है और खाँसने लगता है, सूका आगे बढ़कर उसका सीता सहलाती है। दौड़कर भीतर से पानी लाती है। पिलाती है, उसकी खाँसी शान्त हो जाती है और वह कराहने लगता है।)

भगौती : दूर हो जा मेरी नजर से।

सूका : दूर तो हो जाऊँ, तेरी बला से। पर एक ही दिन में सड़ने लगोगे। पानी बिना मर जाओगे, हाँ।
(भगौती को फिर खाँसी आ जाती है। सूका उसके सीने को अपनी हथेली से सहलाती रहती है। फिर वह धीरे-धीरे सो जाता है।)

राजी आती है, वह भी चिन्ता से खड़ी देखती रह जाती है।
सूका : (राजी के पास आती है।) लगता है, देव के यहाँ भी मेरे लिए जगह नहीं है।

राजी : सोये हैं न।
सूका : हाँ, आँख मद्दें तो हैं, लेकिन खाँसी के मारे दम जो हरदम

फूलता रहता है।

राजी : दहिजरा के पूतों ने गाँजा पिला-पिलाकर (रुक जाती है) अब नहीं दिखाई पड़ते मुँहजोंसे।

सूका : अब क्यों दिखाई पड़ेंगे। अभी तो जैसे मरे हुए हैं।

राजी : सरहाने कुछ लोहा-पत्थर रख दिया है कि नहीं, ऐसे में भत-शैतान का बड़ा डर रहता है।

सूका : हाँ, पैताने एक गेंडासा रख दिया है, वह भी इसकी जान में नहीं।

राजी : क्यों?

सूका : तुम तो ऐसी पूछती हो, जैसे इसकी आदत नहीं जानती। हरदम तो मुझे देख-देखकर इसका खून जलता है, ओध से हर घड़ी दाँत पीसता है। अगर इसे पता हो कि इसके पास गेंडासा रखा है, तो तुरन्त गेंडासा फेंक कर मुझे मारे, चाहे जो हो।

राजी : (हेरान चुप रहती है।)

सूका : करम ने जब जहर का पेड़ लगाया था, तब उसमें मेवे कहाँ से कलेंगे।

राजी : कहाँ है नन्दो?

सूका : कहाँ गाँव में परेत रही होगी।

राजी : तभी न। ससुराल में यह हरकत नहीं चलेगी। उस पर उल्टे रोती धूमती है कि सास मारती है, सुसुर गाली देता है, मरद घर से निकालता है।

(सहसा भगौती अपनी नींद में बौखलाने लगता है—हँ...हँ...हँ...मार-मार-मार हँ-हँ।)

सूका : (पास जाकर) एक क्षण की नींद में भी मार-मार नहीं बन्द होता।

भगौती : आय...आय...क्या हुआ?

सूका : हुआ क्या?

भगौती : मैं सो गया था क्या?

सूका : भला तुम सोओगे। मार-मार से छुट्टी मिलेगी तब तो?

भगौती : सपना देख रहा था कि मैं लछिया को पकड़कर लाया हूँ और इसी पावे में बाँध रहा हूँ।

सूका : सपना चाहे जो देख लो, इस पावे में मैं ही बाँधी जा सकती हूँ। मैं ही भाग में यह लेकर उतरी थी, लच्छी

१६ : अंधा कुआँ

नहीं। वह भागवान थी, अच्छे करम थे उसके।
(बाहर से मिनकू काका आते हैं।)

मिनकू : अब कैसी हाल-चाल है?

[विराम]

मिनक : कहो, भगौती, अब कैसी तबियत है?

भगौती : वैसी ही है।

मिनकू : (थैली में से निकालते हुए) यह लो सूका, देवगांव के सोखे ने यह जंतर बनाकर दिया है। इसे उसी पैर में बाँध दो (सूका जंतर ले आती है) उसकी भवानी ने अखाड़े में खेलकर कहा कि अगले मंगल तक पैर बैठ जायगा।

सूका : राजी! जा भीतर से सवा सेर के अन्दाज से अन्न लेती आ।
(राजी भीतर जाती है।)

मिनकू : बहुत पहुँचा हुआ सोखा है, उसके अखाड़े पर पहुँचकर मुझे कुछ बताने की जरूरत ही न पड़ी। बस पाँच पेसा, दो फूल लवांग, जैसे ही मुट्ठी में लेकर मैं बैठा। उसकी भवानी सब भाखने लगी।

भगौती : उसकी भवानी ने यह नहीं बताया कि लछिया कहाँ है?

मिनकू : बताया है—नाम तो नहीं बताया लेकिन उसने रत्ती-रत्ती बात बता दी।

भगौती : क्या?

मिनकू : कि उस रात एक नौजवान घर के किनारे, नीम के पेड़ पर सांझ ही से बैठा था। मिनसार हो रहा था, लछिया बाहर निकली, उसने किसी और को समझकर उसे घर दबाया और वह सीधे लछिया को पच्छू दिशा ले गया। (इसी बीच राजी भीतर से अन्न लाती है। सूका उसे लेकर भगौती को छुआती है। फिर जंतर को उसके टूटे पैर में बाँध देती है।)

भगौती : कहाँ ले गया पच्छू दिशा में?

मिनकू : बहुत बड़ा शहर है, कपड़ा, लोहा और चमड़े के बड़े-बड़े कल-कारखाने हैं उस शहर में।

भगौती : कानपुर शहर, जिन्दा है अभी?

मिनकू : हाँ, हाँ, जिन्दा क्यों नहीं है। उसको पाँच सौ रुपये में एक ठेकेदार ने खरीद लिया है।

भगौती : अब तो अच्छा होने दो। उसने वह नहीं बताया काका कि लछिया के भागने में किसी औरत का हाथ था।

सूका : किसी और का क्या, सीधे-सीधे सूका का नाम क्यों नहीं लेते?

भगौती : मैं तो नाम लूँगा ही, चाहे किसी सोखा-माली की भवानी बताये या न बताये।

मिनकू : यह तुम्हारा भ्रम है भगौती।

भगौती : नहीं, मेरा विश्वास है काका।

सूका : तेरे विश्वास में लगे आग।

मिनकू : सोखा ने कुल सौ रुपये का खर्च बताया है, लेकिन यह भी कहा है कि वह लड़की को पकड़कर दिखा देगा।

भगौती : सौ तो क्या काका, मैं पाँच सौ रुपये खर्च करने के लिए तैयार हूँ। वह भूत हाँकना नहीं जानता काका?

मिनकू : क्यों नहीं। ओह! वह तो ऐसी मूठ मारता है कि घड़ी-घण्टे में आदमी अंधा हो जाय, बाधी हो जाय, उसके मुँह से बात न निकले।

भगौती : क्या लेता है?

मिनकू : यह तो नहीं पूछा।

भगौती : चाहे जो लगे काका। तुम कल ही देवगांव जाओ और सोखा से कहो कि वह इन्दरवा पर भूत हाँक दे। ऐसी मूठ मारे कि वह अंधा होकर छटपटाता हुआ मेरे पास आकर गिर पड़े। (आवेद में) और मैं... और मैं... सूका।

सूका : क्या है, पागल तो नहीं हो गये।

भगौती : पागल तो तूने बना ही दिया। एक बात सुन, सरहाने मेरी कटार लाकर रख दे।

सूका : क्यों?

भगौती : इन्दरवा जब मेरे सामने अंधा होकर छटपटाकर गिरेगा, फिर मैं अपनी कटार से उसका कलेजा निकालूँगा।

मिनकू : लेकिन अभी इतनी जलदी क्यों। उकताने से थोड़े काम होता है, अभी तो सोखा के पास मैं कल जाऊँगा।

भगौती : नहीं काका, हो सकता है कि कल मैं भूल आऊँ (रुक कर) सूका कटार कहाँ है, ला जलदी से।

सूका : उसे मैंने गाँव वाले कुएँ में फेंक दिया।

भगौती : और मेरा फरसा?

सूका : पता नहीं।

भगौती : और मेरी लठिया? बोलती है नहीं तो अभी... (दौत पीसता

अंधा कुआँ

है।)

सूका : काटकर चूल्हे में लगा दिया।

भगौती : देखा न काका। तिस पर तुम लोग मेरा ही कसूर देते हो,
यह औरत है कि चुड़ैल।

मिनकू : (चुप है।)

सूका : तैने ही चुड़ैल बनाया है। लाठी, गेंडासा, फरसा,
कटार। इन्हें अपने घर में रहने दूँगी, जिसने मेरे तन का
खून पिया है, उसमें लगे आग।

भगौती : (कोध से) सुन लो कान फाड़के काका, राजी तू भी सुन ले,
नहीं तो बाद को तुम्हीं लोग पुतला टाँगने लगते हो।

मिनकू : उसने डर के मारे ऐसा किया है, बचाव के लिए कि फिर
कभी तुम उन्हीं हथियारों से न मार बैठो।

भगौती : (चुप है।)

सूका : काका! इसी दायें पैर से इसने मेरे पेट में मारा था—
कलेजे से लेकर पेंडू तक पत्थर जैसी माँठ पड़ गयी है। जब
पुरवैद्या वहती है तो अन्न को कौन कहे, मैं एक बूँद पानी
तक नहीं धूँट पाती। दर्द के मारे मुर्दा हो जाती हूँ।

भगौती : तो उसी पाप से मेरा यह पैर टूटा है, बोल। बोलती क्यों
नहीं?

सूका : क्या बोलूँ?

मिनकू : (जाने लगते हैं।)

भगौती : चले काका।

मिनकू : हाँ!

भगौती : तो कल भौर में देवगाँव जाने की बात पक्की रही न?

मिनकू : हाँ, बिल्कुल पक्की।

(मिनकू का प्रस्थान)

सूका : बैठो न, खड़ी क्यों हो?

राजी : नहीं, अब घर चलूँगी दीदी।

सूका : यह भी तो घर ही है।

(चुप है।)

(बाहर से नन्दो आती है।)

भगौती : (कोध से देखता हुआ) कहाँ थी तू (नन्दो घबड़ा जाती है) बोल
कहाँ थी?

नन्दो : हरखू मौसिया के घर गयी थी।

भगौती : वयों? बताती क्यों नहीं?

नन्दो : चोटी कराने गयी थी।

भगौती : लेकिन तेरे तो सब बाल खुले हैं। इधर आ, मेरे पास चल,
मेरे पास।

सूका : क्या करोगे पास बूलाकर?

भगौती : मैं कहता हूँ कि उसे मेरे पास आने दे।

सूका : मैं पराये घर की लड़की पर तुझे हाथ नहीं उठाने दूँगी,
हाँ।

भगौती : आज मेरा पैर न टूटा होता तो बताता।

सूका : (भगौती के पास चली जाती है) मजबूर वयों पड़ा है, ले मार,
मैं तो तेरे पास खड़ी हूँ, तेरा हाथ तो नहीं टूटा है, मार न।
मुझे मार...मार...ले पेट भर जाय।

भगौती : (आँख मूँदे चुप पड़ा रहता है।)

सूका : मजबूर तू क्यों है, मजबूर मैं हूँ—अपने से भी, दुनिया से
भी।

(सूका राजी के पास जाकर खड़ी हो जाती है। नन्दो सूका से
सटी खड़ी रहती है। सूका नन्दो को लेकर बैठ जाती है और
उसका सिर खोलती है। धीरे-धीरे प्रकाश बुझता है)

(संगीत)

तोहि मनाऊँ देवी सारदा

हृदय उठी हिलोर

सूका का फिर क्या हुआ

हृदय बढ़ाओ डोर.....

(संगीत पर से प्रकाश बुझकर मंत्र पर उभरता है। सूका जमीन
पर लेटी है। बाहर खिड़की पर एक आवाज होती है। सूका जगकर
चिराग की लौ तेज करती है और अपने आँचल को बाँध, साढ़ी
का फाँड़ कस लेती है। इन्दर आता है। दायें हाथ में नंगी कटार
लिये हुए है। सूका पहली दृष्टि में उसे देखकर भय से काँप जाती
है, लेकिन दूसरे ही क्षण वह भगौती के पायताने बढ़कर बिस्तरे के
नीचे रखे हुए गेंडासे को निकालती है।)

इन्दर : खबरदार, मेरी ओर मत बढ़ना सूका।

(सूका के 'क्यों' कहने पर वह अपने बन्द मुँह पर उँगली रखकर
उसे चुप रहने का सकेत करता है।)

सूका : (दृढ़ता से) मैं चुप तब होऊँगी, जब इसी गेंडासे से तेरा सिर

६० :: अंधा कुर्बां

काट लैंगी। बोल दाढ़ीजार के पूत, यहाँ क्यों आया?

इन्द्र : आज मैं इसे जान से मारकर तुझे निकालने आया हूँ।
सूका : नहीं ऐसा न कर। तेरे पांव पड़ती हूँ, ऐसा न कर। मैं विधवा हो जाऊँगी, मुझ पर दया कर।

इन्द्र : तू उसे पति मानती है?

सूका : हाँ, हाँ।

इन्द्र : लेकिन यह आदमी नहीं है।

सूका : कुछ तो है।

इन्द्र : कुछ नहीं है।

(आवेश में भगौती की ओर बढ़ता है।)

सूका : खबरदार, जो कदम आगे बढ़ाया।

(इन्द्र के सामने तन कर खड़ी हो जाती है।)

इन्द्र : ओह! यह मजाल।

सूका : (गेंडासा ताने चुपचाप खड़ी है।)

इन्द्र : तो आज गेंडासा है तेरे हाथ में?

सूका : समझा क्या था। नामर्द कहीं का। यह धायल है लेकिन बेआसरा नहीं है।

(सहसा इन्द्र सूका के हाथ से गेंडासा छीनने के लिए झपटता है, सूका क्रोध से उस पर गेंडासा चला देती है। उसी समय भगौती जग जाता है। सूका के गेंडासे की चोट इन्द्र अपने बायें हाथ पर रोक लेता है, हाथ कट जाता है, लेकिन वह सूका के हाथ से गेंडासा छीनने के लिए तत्पर है। भगौती क्रोध से बार-बार उठने का प्रयत्न करता है, लेकिन पीड़ा से चीखकर गिर पड़ता है।)

भगौती : मार। मार शैतान को। शाबाश सूका। छोड़ना नहीं। जाने न पाये।

(भगौती खाट के नीचे रखे हुए लोटा-गिलास तथा अन्य मिट्टी के बर्तनों को उठा-उठा कर क्रोध से इन्द्र को मारता रहता है और उहार भी मचाता रहता है। इन्द्र सूका के हाथ से गेंडासा छीनता है। सूका की दोनों हथेलियों से खून बह रहा है लेकिन फिर भी वह दोनों हाथों से उसे पकड़े है।)

सूका : मेरे जिन्दा रहते तू उसे नहीं मार सकता। तेरा खून पी लैंगी। नहीं, नहीं... नहीं... यह नहीं हो सकता। मेरे जीते-

जी यह नहीं हो सकता।

(भगौती अपने प्रयत्न में खाट से गिरकर नीचे आ जाता है और

अपनी समस्त पीड़ा को भूलकर वह पड़े-पड़े इन्द्र की ओर बढ़ने लगता है। उसी समय इन्द्र सूका के हाथ से गेंडासा छीन लेता है।)

भगौती : (चीबकर) ले मुझे मार। उस पर हाथ न चलाना, तेरा दुश्मन मैं हूँ, सूका नहीं।

इन्द्र : हाँ, हाँ, तुझे ही मारूँगा। उसे तो ले जाऊँगा।

सूका : नहीं, नहीं, यह नहीं होगा।

(दोनों हथियारों से एक ही साथ इन्द्र जमीन पर गिरे हुए भगौती पर चोट करता है, सहसा बीच से मैं सूका फाट पड़ती है। इन्द्र के दोनों उठे हुए बार सूका पर मही उतर जाते हैं और वह कहण कराह से भगौती के सींग पर विषर जाती है। इन्द्र सूका को देखकर पागल-सा हो जाता है। वह तेजी से तीन बार पूरे दुइदरे में चक्कर काटता है, फिर बहुत मजबूती से वह दाये पावे को अपनी बाहों में जकड़ लेता है, जैसे किसी ने उसे बाँध दिया हो। उसकी अपराध भरी भयानक आँखों में सूका का खून साफ उतरा आया है।)

भगौती : (दम तोड़ती हुई सूका को अपने सीने से जकड़े हुए चिल्लात रहता है) सूका... मैंने अपनी सूका को मार डाला, सूका... सूका... सूका।

(लाठी लिए हुए अलगू दौड़ा हुआ आता है उसके पीछे ही मिन्दू काका और गाँव के कई लोग लाठी लिए हुए दौड़े आते हैं, और चारों ओर से इन्द्र को घेर लेते हैं। इन्द्र अब भी उसी तरह स्वयं पावे से अपने को बाँधे हुए खड़ा रहता है। मनुष्यों की क्रोध, भय और आवेशपूर्ण कोलाहल को चीरती हुई भगौती के कहण आवाज़ उठती रहती है—“खूनी मैं हूँ, सूका का खून मैं किया है, मैंने किया है।”)

(मंच का प्रकाश बुक्कर कथाकार पर उभरता है।)

कथाकार : जलालपुर गाँव में जिस तरह सूका और भगौती की कहाने सचमुच खतम हुई थी उसी तरह आपको सुना दी। परं इसके आगे एक बात कहे बिना पूरी नहीं होती। आप लो कहेंगे—अरे यह क्या है। हाँ, जो सत्य है न, वह बुद्धि और तरफ से बड़ा है। भगौती मरा नहीं। जैसे सूका भी नहीं मरी। भगौती अब भी अपने सूने घर-आँगन को निहारता है और दरवजे पर वहाँ बैठा-बैठा अपनी आँखों में देखता है। मानो सूका आयी है और उसी खमिया को पकड़कर है।

रही है।
(वही दृश्य। भगीती बैठा निहार रहा है। सूका आती है। उसी
खमिया को पकड़कर मुस्करा रही है। संगीत उठता है—)

केहु ना सुनी पुकार
हिरनी तब कुँअना गिरी।
तुहि राखो यहि बार
बिरन गोसाँई कुँअना ॥
सुनो मुनी।
सुनो गुनी !……

[समापन]

